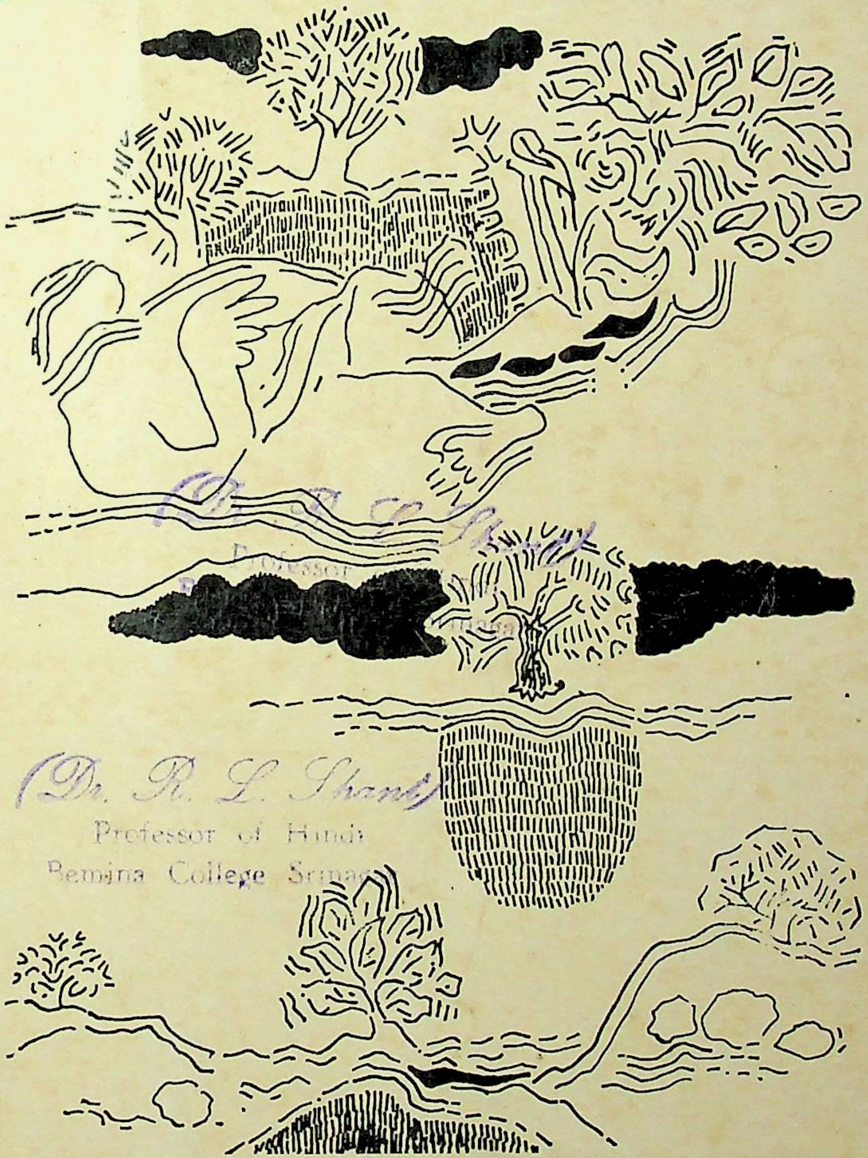
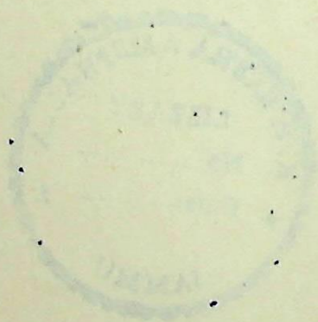
हिन्दी

शीराज़ा



जे० एंड के० अकादमी ऑफ़ आर्ट कल्चर
एंड लैंग्वेजिज़, जम्मू



द्विमासिक **शीराज़ा** हिन्दी

वर्ष : २३ अप्रैल-मई—१९८७ अंक : १

पूर्णांक—८५ फोन नं०—५८५३

विषय-अनुक्रम

प्रमुख सम्पादक
मुहम्मद यूसुफ़ टेंग

सम्पादक
ओम गोस्वामी

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार—सम्पादक शीराज़ा हिन्दी, जे० एण्ड के० अकैडमी आफ आर्ट्स, कल्चर एण्ड लेंग्वेजिज़, केनाल रोड़, जम्मू तवी—१८०००१.

अकादमी डायरी

सांस्कृतिक गतिविधियां

पर्यावरण जीव-सृष्टि का आधार रहा है। परन्तु आज के औद्योगिक दौर की विडंबना यह है कि विकास की नयी दिशाओं को तलाश करते हुये, प्राकृतिक सम्पदा का दोहन करते हुए मानव ने सर्वाधिक हानि इसी जीवनाधार को पहुँचाई है। यह अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारने जैसा है। वायु, जल आदि के प्रदूषण तथा वृक्षों एवं वनों की अंधाधुंध कटान ने एक भयंकर रूप धारण कर लिया है। वृक्षों के बचाव से ही मानवता का बचाव संभव है। ४ अप्रैल १९८७ ई० को जम्मू के सुरम्य 'बाग-ए-बाहु' में 'वृक्ष से बात' विषय को लेकर एक चित्रांकन प्रतियोगिता का आयोजन इस दिशा में एक सराहनीय कदम कहा जा सकता है। शिक्षा विभाग के सहयोग से सम्पन्न इस प्रतियोगिता में जम्मू प्रांत से छः सौ से अधिक बच्चों ने भाग लेकर इस विषय से सम्बन्धित चित्र बनाए।

जम्मू में सांस्कृतिक गतिविधियों के विस्तार का एक चिन्ह सद्य उद्घाटित काफी हाऊस भी है। १८ मई १९८७ को इस अवसर पर अकादमी की ओर से लोक-गायन का एक मनोहारी कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया, जिसमें जम्मू की सुप्रसिद्ध भाख शैली के गीत श्री प्रद्युम्न सिंह और कु० कृष्णा ने प्रस्तुत किए। □

सम्पादकीय

समन्वय की सुगन्ध

हिन्दी का विकास हमारी राष्ट्रीय चेतना, वैचारिक एकता और भविष्य की चिन्ता से प्रत्यक्षतः जुड़ा हुआ है।

हमारे देश में विचार और विश्वास की अनेक धाराएं बह रही हैं। बहु-जातीय समाज में विभिन्न संस्कृतियां धर्म और भाषाएं पनपती हैं, सबको विकास का बराबर अवसर मिलता है। अपने आप में भारत एक पूरी दुनिया को समोए हुए है। इस धरा के कवियों ने इस भूमि के उपादानों की, प्रकृति-प्रदत्त नेमतों की बार-बार स्तुति की है। काव्य की विभिन्न परिपाटियों में इस विविधता की सोंधी महक भरी हुयी है। इस देश में एक ही समय में जैसे विविध ऋतुएं देखी जा सकती हैं, वैसे ही विचारों की अनेकता भी हमारी संस्कृति में लक्षित की जा सकती है। विचारधारा की सहस्रों पगडंडियों में से आप किसी के भी अनुगामी हो सकते हैं। चाहें तो अपने लिए स्वयं एक रास्ता तलाश सकते हैं। इस छूट के बावजूद हमारा साहित्य-सृजक सदा सब को साथ लेकर चला है। तमाम पगडंडियां एक ही मंजिल तक ले जाती हैं। विचार-वैभिन्य के रहते हुये भी भावात्मक एकात्म का पनपना इसी युगों पुरानी परम्परा की देन है। भारतीय मानस अनेकता में एकसूत्रता ढूँढता है। वह बिखराव में नहीं समन्वय में विश्वास रखता है। इसी सांस्कृतिक स्तर से यहाँ मानस वाणी मुखर हुयी है। आज के बदलते परिवेश में जब भाषावाद और संकीर्ण प्रांतवाद से अनुस्यूत कट्टरतावाद इस सांस्कृतिक परम्परा के समक्ष एक चुनौती बनकर खड़ा है, राष्ट्र-भाषा हिन्दी का दायित्व हर लिहाज से बहुत बढ़ जाता है। इसके माध्यम से देश भर में प्रतिभा के संचयन-उन्नयन द्वारा ही हम अपनी परम्परा की रक्षा कर सकते हैं। शीराजा के माध्यम से हम भी इस महान् प्रयास में दशकों से सम्मिलित हैं। अपने में विविध फूलों की सुगंध समोए हुए शीराजा का यह गुलदस्ता प्रस्तुत है।

□ ओम गोस्वामी

कश्मीर का इतिहास और संस्कृति

□ मज़हर अहमद खान

कश्मीर की घाटी पूर्व से पश्चिम तक ८०० किलोमीटर लम्बी और उत्तर से दक्षिण तक ४८० किलोमीटर चौड़ी है तथा समुद्र तल से २१३४ मीटर ऊंची है। 'कश्मीर' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में अनेक मत हैं। कहते हैं कि कश्मीर को कश्यप ऋषि ने बसाया था। इन्हीं के नाम पर इसे 'कश्यपपुर' या 'कश्यपमीर' कहा जाता था, जो बाद में बिगड़ कर 'कश्मीर' बन गया।

'नीलमत पुराण' के अनुसार कश्मीर पहले एक झील थी, जिसे 'सतीसर' कहते थे। इस झील के किनारे ऋषि-मुनि रहा करते थे। इस सतीसर में एक राक्षस जलोद्भव रहा करता था जो इन ऋषि-मुनियों को सताया करता था। किनारों पर रहने वाले नाग लोग तंग होकर इस राक्षस से मुक्ति पाने के लिए कश्यप-ऋषि के पास गये। कश्यप-ऋषि ने सतीसर को चीर डाला। झील का सारा पानी बह गया। सतीसर शुष्क हो गया। इस प्रकार पर्वत-शृंखला से घिरा यह रमणीक प्रदेश निवास योग्य बन गया। कश्मीर के लोग ग्रीष्मकाल में ही यहां रहते थे और शीतकाल में यहाँ से बाहर चले जाते थे। यहाँ के आदि निवासी जो पहाड़ों पर रहते थे 'पिशाच' और 'यक्ष' कहलाते थे। यह लोग कश्यप-ऋषि की बसाई हुई 'नाग' जाति के लोगों को जाड़ों के मौसम में पीड़ित करते थे। इनको सन्तुष्ट करने के लिए ब्राह्मण इन्हें बलि दिया करते थे। 'खेची मावस' उत्सव कश्मीर के पंडित पौष की अमावस्या को आज भी मनाते हैं। उस दिन खिचड़ी और स्वादिष्ट व्यंजन एक थाली में रखकर, घर से बाहर यक्ष के लिए रखते हैं। अब यक्ष आदि तो इसे खाने के लिए आते नहीं, लेकिन कुत्ते-बिल्ली अवश्य चट कर जाते हैं। कश्मीरी ब्राह्मणों के अतिरिक्त सिक्ख, मुसलमान, बौद्ध यहां रहते हैं। समय-समय पर हर एक धर्म-सम्प्रदाय ने यहाँ उन्नति की। रामदेव के अन्तिम वंशज महाराज प्रवरसेन (६०० ई०) ने श्रीनगर की नींव रखी। प्रसिद्ध इतिहासकार कल्हण के अनुसार कश्मीर का पहला हिन्दू नरेश गोनन्द था, ज़ो जरासन्ध का निकट सम्बन्धी था। इसके बाद

कश्मीर पर अनेकों नरेशों ने राज्य किया, लेकिन किसी भी नरेश के बारे में कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है। कल्हण ने लिखा है—

'पंचत्रिंशन्म हीपाला मग्ना विस्मृतिसागरे।'

अर्थात् महीपालों के नाम तथा कर्म विस्मृति के सागर में डूब चुके हैं। इसके बाद लव, कुश, खगेन्द्र आदि नरेशों के शासन के बाद सम्राट अशोक ने कश्मीर पर (२५० ई०) अधिकार किया। इस की राजधानी 'पुराणाधिष्ठान' (वर्तमान में पांद्रेठन) के पास थी। कश्मीर की शोभा अशोक के राज्यकाल में अकथनीय थी। कश्मीर धन-धान्य से पूर्ण था। अशोक के राज्यकाल में यहां बौद्ध-धर्म का प्रचार आरम्भ हुआ। अहिंसा के सिद्धान्त को शिरोधार्यकर बौद्ध और हिन्दू साथ-साथ रहते थे। कुछ समय तक बौद्ध-धर्म खूब पनपा लेकिन धीरे-धीरे हिन्दू-धर्म ने उसे उखाड़ फैंका। लद्दाख में आज भी ६०% बौद्ध-धर्म के अनुयायी पाये जाते हैं। एक भयंकर आग लग जाने से कश्मीर का विध्वंस हुआ और अशोक के राज्य की मात्र स्मृति पाँद्रेठन का बौद्ध मंदिर आज भी विद्यमान है। कश्मीर के इतिहास में कनिष्क का नाम बौद्ध-धर्म के विस्तार एवं पुनरुद्धार के लिए प्रसिद्ध है। कनिष्क ने कनिष्कपुर नामक एक नगर बसाया जो अब कानिसपुर (बारामूला) के नाम से जाना जाता है। तृतीय बौद्ध सभा का आयोजन इन्हीं के समय में 'ज़ोलुर' जिसे 'ज़ैनगीर' (सोपुर) भी कहते हैं, कश्मीर की सुरम्य घाटी में हुआ। कश्मीर की जो बौद्ध धर्म को देन है, वह है हिन्दू-धर्म और बौद्ध-धर्म का समन्वय। कश्मीर के अनेक प्रचारकों ने विदेशों में जाकर बौद्ध-धर्म का प्रचार-प्रसार किया। ईसा की छठी शताब्दी में जब ह्यूनसांग कश्मीर आये, उस समय दोनों जातियों का पतन हो रहा था। कश्मीर पर 'हूनों' का अधिकार हो चुका था, मंदिर और विहार नष्ट हो रहे थे। मिहिरकुल (५२८ ई०) में काल की तरह कश्मीर पर छा गया। कल्हण ने लिखा है—मिहिरकुल बहुत ही कम हंसता था। उसने एक हाथी को पर्वत की चोटी से गिरता देखा और उसकी चिंघाड़ सुनकर उसे बहुत हंसी आई। अपने मनोविनोद के लिए उसने 'पीर-पंचाल' (५१९१ फुट) की पहाड़ी पर से १०० हाथियों को एक साथ गिराये जाने की आज्ञा दी।

ललितादित्य मुक्तपीड़ (६९९-७३६) महान शासक था। उनका युग स्वर्ण अक्षरों में लिखने योग्य है। इन के शासनकाल में कश्मीर ने बहुमुखी उन्नति की। ललितादित्य ने कन्नौज, पंजाब, तिब्बत, बदखशां और पिकिंग को जीता। १२ वर्ष के बाद वह कन्नौज से एक महाकवि भवभूति को अपने साथ ले आये, जिसे उन्होंने अपना राज्य कवि बनाया। ललितादित्य ने निर्माण-कला को प्रोत्साहन दिया। उनका बनाया हुआ 'मार्तण्ड' मंदिर उस जमाने की कारीगरी और शान की जिंदा यादगार है। यह मंदिर 'मटन' से दो मील की दूरी पर 'करेवा' में स्थित है। मंदिरों के निर्माण में उसने पर्याप्त धनराशि व्यय की। हिन्दू होते हुए भी उनके मन में बौद्धमत के प्रति श्रद्धा थी। 'अश्कर' में उसी ने एक बौद्धमठ तथा सूचि स्तम्भ बनवाया। उसने एक बहुत बड़ा लंगर बनवाया जहाँ प्रतिदिन एक लाख लोगों को भोजन प्राप्त होता था। इसके बाद शैव-धर्म के प्रसिद्ध आचार्यों का प्रादुर्भाव हुआ। अभिनव गुप्त और क्षेमेन्द्र जैसे दार्शनिक इस युग में ही हुए हैं। जिन से शैव-धर्म को स्तुत्य योगदान प्राप्त हुआ। ८५५ से ८८३ ई० तक कश्मीर पर अवन्तिवर्मन का राज्य रहा। उन्होंने 'अवन्तिपुर' का निर्माण किया। इनके द्वारा बनाये गये शिव और विष्णु के मंदिर प्रमुख हैं। अवन्तिपुर में आज भी इस की विशालता तथा स्थूलपन और वास्तुकला को देखकर विस्मय होता है। कहते हैं कि सिकंदर 'बुतशिकन' ने इनका विध्वंस

किया था। कश्मीर पर हिन्दू नरेशों का शासन १३४० ई० तक रहा, लेकिन उनकी शक्ति का ह्रास १२वीं शताब्दी में ही होने लगा था। हिन्दू शासकों की परम्परा में वीरांगना कोटारांगना कश्मीर की अन्तिम कुशल शासिका हुई हैं। इसके बाद मुसलमान शासकों का शासन आरम्भ होता है। सर्वप्रथम यहां बुलबुलशाह, अब्दुल रहमान, शरफुद्दीन ने इस्लाम का बीजारोपण किया। जिनके द्वारा रेंचनशाह ने इस्लाम धर्म स्वीकार किया। इसके बाद सुलतान शाह मीर ने मुस्लिम राज्य की नींव डाली। शाह मीर के पोते कुतबुद्दीन के काल में अमीर कबीर मीर और सैयद अली हमदानी ने ईरान से आकर इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार आरम्भ किया। सैयद अली हमदानी अपने साथ ७०० भक्त-जनों को लेकर आये। सैयद अली हमदानी की जन्मतिथि ज्ञात नहीं हो पायी है, लेकिन उनके द्वारा निर्मित खानकाह के मुख्य द्वार पर ७८० हिजरी लिखा है, जिसे इनकी मरण तिथि मानते हैं।

कश्मीर के पहले मुसलमान शासक रेंचनशाह (१३२५-२७) का नाम आता है। तिब्बत से आये इस बौद्ध ने इस्लाम-धर्म अपनाया और केवल दो वर्ष तक शासन किया। इस वंश के तीन शासक उल्लेखनीय हैं; सुलतान शहाबुद्दीन, सुलतान सिकन्दर 'बुतशिकन' और ज़ैनुलाबद्दीन। मुसलमानों के शासनकाल में जहाँ, इन के निर्दय और क्रूर व्यवहार से सैंकड़ों कश्मीरी लोग, कश्मीर छोड़ कर भाग गये, वहाँ इन के दौर में उन्नति और हिन्दू-मुसलमान को समान अधिकार दिये गये। ज़ैनुलाबद्दीन (१४२०-१४७० ई०) ने कश्मीर को एक नया मोड़ दिया। ज़ैनुलाबद्दीन को कश्मीरी जनता 'बड़शाह' के नाम से पुकारती है। बड़शाह ने हिन्दुओं को धार्मिक आज़ादी दी और अपने दरबार में उन्हें ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। उनके दरबार में विद्वान् और साहित्यकार सम्मानित हुआ करते थे। मुल्ला अहमद ने महाभारत का फारसी अनुवाद इन्हीं के राज्यकाल में किया था। उन्होंने नगरों, पुलों, इमारतों आदि का निर्माण भी कराया। अन्दरकोट से सोपुर तक एक बाँध है, जिसका निर्माण बड़शाह द्वारा ही सम्पन्न हुआ। 'पेपरमाशी,' 'कालीन,' और 'शालों' को इन के राज्य में बढ़ावा मिला। 'सेब' और 'नाशपाती' के वृक्ष बड़शाह ने ही ईरान से मंगवाये और कश्मीर में लगाये गये। खुरासान से रेशम के कीड़े मंगवा कर उन्होंने रेशम का उद्योग कश्मीर में चलाया। इन की कीर्ति और यश की प्रशंसा आज भी कश्मीर का बच्चा-बच्चा करता है। १५८६ ई० में अकबर ने यूसुफ़शाह चक को हराकर कश्मीर पर अपना अधिपत्य जमाया। इनके दरबार में पीर, मुल्ला और ब्राह्मण को समान अधिकार प्राप्त थे। श्रीनगर के हारीपर्वत पर बना किला, आज भी अकबर की याद दिलाता है। १६०५ ई० में जहांगीर ने राज्य की बागडोर सम्भाली। इन्होंने कश्मीर में निशात, शालीमार, नसीम बाग, चश्माशाही, बेरीनाग आदि उद्यानों का निर्माण किया। दाराशिकोह ने 'ज़बरवन' पर्वत की ओट में 'परीमहल' बनवाया था। अपने गुरु अखुन्द मुल्लाशाह के लिए दाराशिकोह ने इसमें एक ज्योतिषशास्त्र का एक स्कूल खोला था इसमें उन्होंने एक पुस्तकालय स्थापित किया और पुराणों का अनुवाद संस्कृत से फारसी में कराया था।

काबुल के अहमदशाह अब्दाली ने कश्मीर पर आक्रमण किया और इस घाटी को मुगलों से छीन लिया और अफगान शासन आरम्भ किया। इन का लक्ष्य कश्मीर में लूटमार करना और यहाँ की सम्पत्ति को हथियाना था। अफगानों ने ६७ वर्षों तक कश्मीर पर राज्य किया। इनके आतंक से तंग आकर हिन्दू और मुसलमान मिलकर पंजाब के नरेश महाराजा रणजीत सिंह के पास सहायता के लिए गये। १८१९ ई० में

कश्मीर पर सिक्ख शासन स्थापित हुआ और २७ वर्षों तक सिक्खों ने राज्य किया। महाराजा गुलाब सिंह ने कश्मीर को अंग्रेजों से ७५ लाख रुपयों में खरीदा था। गुलाब सिंह ने कश्मीर में डोगरा शासन की नींव १८४६ ई० में डाली। अपनी कार्य कुशलता से लद्दाख, तिब्बत आदि सीमावर्ती इलाके अपने राज्य में मिलाए और वर्तमान जम्मू-कश्मीर की स्थापना की। महाराजा रणवीर सिंह को गद्दी पर बैठाया गया। उन्होंने अनेक मंदिर बनवाए। जम्मू में रघुनाथ मंदिर, रणवीर संस्कृत महाविद्यालय की भी उन्होंने स्थापना की। इनके बाद प्रताप सिंह और हरि सिंह के नाम उल्लेखनीय हैं। डोगरा शासन लगभग १०० वर्षों तक रहा। १९४७ में भारत-विभाजन के अवसर पर महाराजा हरिसिंह ने पाकिस्तानी आक्रमण से पूर्व भारत के साथ राज्य का विलय करके, शासन जनता के प्रतिनिधियों को सौंपा। जिसके अनुसार उनके सुपुत्र युवराज श्री कर्ण सिंह और शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को मन्त्री-मण्डल का नेता नियुक्त किया गया। १९५३ ई० में शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को देश विरुद्ध कार्यवाही करने के अपराध में राज्यपाल श्री कर्णसिंह ने प्रधान मन्त्री के पद से हटा कर नज़रबन्द किया और बख्शी गुलाम मुहम्मद को प्रधान मन्त्री का पद सौंपा। कर्णसिंह कश्मीर के अन्तिम सदरे रियासत रहे। बाद में मुख्यमन्त्री के पद पर यहाँ गुलाम मुहम्मद सादिक, मीर कासिम, शेख मुहम्मद अब्दुल्ला और फारूक अब्दुल्ला, जी० एम० शाह और सम्प्रति फारूक अब्दुल्ला मुख्यमन्त्री हैं।

कश्मीर सांस्कृतिक दृष्टि से अति सम्पन्न है। हिन्दू-धर्म, बौद्ध-धर्म, शैवमत, शक्ति-पूजा विभिन्न वामाचार, इस्लाम, सूफीमत आर्य-समाज, ईसाई-धर्म, जैन-धर्म आदि सभी धर्मों के लोग आज कश्मीर में रहते हैं। कश्मीर में पहले सिर्फ हिन्दू लोग थे, जो शैवमत के अनुयायी थे। इसके बाद कश्मीर में मुसलमानों का आगमन हुआ और इस्लाम धर्म का प्रचार-प्रसार आरम्भ हुआ। मुसलमान सूफी सन्त आर्य संस्कृति से प्रभावित जनमानस की दृष्टि में 'ऋषि' और 'बाबा' बन गए। इन ऋषियों के प्रतिष्ठान आज भी कश्मीर में मौजूद हैं। सैयद अली हमदानी ने एक विशाल भवन का निर्माण किया, जिसमें इनके साथ आये भक्त रहते थे। इस भवन के अन्दर आज सैयद अली हमदानी का स्मारक है। यह प्रतिष्ठान ' खान काहे मुअल्लाह'' के नाम से आज कश्मीर भर में प्रसिद्ध है। इस प्रतिष्ठान की एक दीवार पर सिंदूर पुता है, जहाँ हिन्दू महाकाली की पूजा करते हैं। यहां उत्सव भी लगते हैं। हिन्दू और मुसलमान दोनों खानकाह के प्रति श्रद्धा रखते हैं; जिससे धर्म निरपेक्षता की भावना प्रकट होती है। आध्यात्म भावना कश्मीर की संस्कृति के कण-कण में व्याप्त है। 'शिवरात्रि', 'नवरेह', 'राम नवमी', 'बैसाखी', 'श्रवण-पूर्णमासी' आदि हिन्दुओं के मुख्य पर्व तथा मुसलमानों के 'ईद', 'मुहर्रम', 'रमज़ान', 'सन्तों' एवं 'सूफियों' की स्मृति से सम्बन्धित 'उर्स' वादी में भावात्मक एकता की सुगन्ध बखेरते हैं। हिन्दू और मुसलमानों के एक ही स्थान पर पाये जाने वाले धार्मिक स्थान, एक दूसरे को समीप लाते हैं। 'कार', 'खान', 'शाह', 'पीर', 'मीर', 'डार' आदि हिन्दू और मुसलमानों के उपनाम भी इनके एक होने का ज्वलंत प्रमाण देते हैं।

कश्मीर में 'क्षीर भवानी' नामक हिन्दुओं का एक मंदिर है, जहाँ कश्मीरी जनता व्यापक रूप से पूजा पाठ करती है। इस मंदिर का महत्व महाराज्ञी देवी की मूर्ति है, जो कि प्राचीन मूर्तिकला का अपूर्व नमूना है। ज्येष्ठ शुक्लाष्टमी को महाराज्ञी के जन्मोत्सव के दिन इस मंदिर में बने जलकुण्ड के पानी का रंग अपने आप बदलने लगता है। इस दिन कोई भी माँस खाकर नहीं जा सकता। अगर कोई मांस खाकर जाएगा तो उसके अनिष्ट

होने की आशंका रहती है। क्योंकि कश्मीर में पंडित हो या ब्राह्मण, सभी निःसंकोच माँस, मछली का सेवन करते हैं। इस दिन कश्मीरी पंडित तीन-चार दिन पहले ही अण्डा, माँस, मछली आदि खाना छोड़ देते हैं। इस दिन मुसलमानों की भी एक बड़ी संख्या इस मंदिर में श्रद्धा के फूल अर्पित करती है।

धार्मिक सहिष्णुता और धर्म-निरपेक्षता के बहुत से उदाहरण कश्मीर में ही मिल सकते हैं। देश के दूसरे भागों की तरह यहाँ भी एक धर्मावलम्बी दूसरे की संख्या में अधिक हैं लेकिन इन में कभी भी किसी भी, धार्मिक संकोच ने कहीं भी क्रूर रूप धारण नहीं किया है। इसका सबसे मुख्य कारण है, हिन्दुओं और मुसलमानों के धार्मिक स्थान कहीं-कहीं एक पाए जाते हैं और कहीं बहुत ही निकट हैं। 'हारीपर्वत' पर एक ओर हिन्दुओं की देवी का मंदिर है और दूसरी ओर मखदूम साहब का प्रतिष्ठान (ज़ियारत) है। यह दोनों तीर्थ एक दूसरे से अढ़ाई सौ गज़ की दूरी पर हैं।

कश्मीर की संस्कृति की दूसरी विशेषता है यहाँ की साहित्यिक परम्परा। कश्मीर की संस्कृति के विकास में संस्कृत भाषा बहुत ही महत्वपूर्ण रही है और कश्मीर के पुस्तकालय भी संस्कृत हस्तलिखित प्रतियों से युगों-युगों तक सुशोभित रहे। स्पष्ट है कि कश्मीर की संस्कृति को स्थिरता देने में संस्कृत का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। ध्वनि सम्प्रदाय के प्रवर्त्तक और 'ध्वन्यालोक' के लेखक आनन्दवर्धन, 'काव्यालंकार-सूत्र' के प्रणेता वामन और 'काव्यालंकार संग्रह' के लेखक उदभट्ट; कश्मीर घाटी के कुछ ऐसे बहुमूल्य रत्न हुए हैं, जिन पर संस्कृत साहित्य को सदैव गर्व रहेगा। 'आनन्दवर्धन' कश्मीर के नरेश अवन्तिवर्मन की सभा में पंडित थे। उन्होंने 'देवी शतक', 'अर्जुन चरित्र', काव्य कृतियों की रचना की। वामन, जयापीड़ के मन्त्री थे। 'काव्यलंकार-सूत्र' में इन्होंने अलंकारों का वैज्ञानिक रूप में विश्लेषण किया है। उदभट्ट भी जयापीड़ की सभा में पंडित थे। इनका अलंकार सम्प्रदाय में विशेष योगदान है। इनके अतिरिक्त संस्कृत के कवियों, लेखकों में उल्लेखनीय हैं—बिल्हण (१०८३ ई०), कल्हण (१०९८ ई०), अभिनवगुप्त (११०० ई०), क्षेमेन्द्र (११०० ई०) मम्मट (११०० ई०) आदि।

ललद्यद (१३३५-१३७६ ई०) का समस्त काव्य 'ललवाक' के नाम से प्रसिद्ध है। इनका काव्य कबीर की भक्ति ज्ञान, निर्गुण भक्ति से पूर्ण है। इनके काव्य में स्पष्टता, सजीवता और सरसता है। ललद्यद ने अपनी आत्मा को ज्ञान और भक्ति की मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियों में मुखर किया है। इन की स्फुट लेकिन सरस अभिव्यक्तियाँ 'वाक' कहलाती हैं। कबीर की तरह ही ललद्यद ने भी 'मसि कागज' का प्रयोग कभी नहीं किया। इनके 'वाक' गेय हैं जो आरम्भ में मौखिक परम्परा में ही प्रचलित रहे और इन्हें बाद में लिपिबद्ध किया गया। उन्होंने लोगों को शिव पथ पर चलने को कहा। दैनिक जीवन के सामान्य उदाहरणों से इन्होंने जनता से एक होने को कहा। वह शिव भक्त थीं—

शिव छुय थलि-थलि रोज़ान
मव ज़ान ह्योन्द त मुसलमान
त्रुक अय छुख त पान पनुन परज़नाव
सोइ छय साहिबस सातो ज़ान।

अर्थात्, ब्रह्माण्ड के कण-कण में शिव रमा है, इसलिए हे मनुष्य! तू हिन्दू और मुसलमान को अलग-अलग न समझ। यदि तू बुद्धिमान है तो अपने आप को पहचानने का

यत्न कर। 'साबह' से जान पहचान करने का वही एक रास्ता है। ललद्यद विवस्त्र घूमती थीं। यह विश्वचेतना को आत्मचेतना में तिरोहित मानती हैं। सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि द्वारा उस परमचेतना का आभास होना सम्भव है। यह रहस्य उसे अपने गुरु से ज्ञात हुआ—

गीरन दोपनम कुनुय वचुन, न्यबर दोपनम अन्दर अचुन।
सुय में ललि गोम वारवत वचुन, तवय ह्योतुम नंगय नचुन॥

अर्थात् गुरु ने मुझे एक रहस्य की बात बताई—बाहर से मुख मोड़ और अपने अन्दर को खोज। बस तभी से यह बात हृदय को छू गई और मैं विवस्त्र नाचने लगी। ललद्यद उस सिद्धावस्था में पहुँच चुकी थी जहां 'स्व' और 'पर' की भावनायें लुप्त हो जाती हैं। जहां मान-अपमान, निन्दा-स्तुति आदि भावनायें मन की संकुचिता को लक्षित करती हैं। जहां पंच भौतिक काया मिथ्याभासों एवं क्षुद्रताओं से ऊपर उठ कर विशुद्ध स्फुरणाओं का केन्द्रीभूत पुंज बन जाती है—

युस हो मालि हेड्येस, गेल्यम मस्ख़र करयेम,
सुय हो मालि मनस खरेम न जांह।
शिव पनुन येलि अनुग्रह करयेम,
लकहुन्द हेड्डुन में करयेम क्याह।

चाहे कोई मेरी अवहेलना करे या तिरस्कार, मैं कभी मन में इसे बुरा न मानूंगी। जब मेरे शिव का मुझे अनुग्रह है तो लोगों के भला-बुरा कहने से क्या होता है।

शेख नूरद्दीन (१३७६-१४३९) ऋषि परम्परा के प्रवर्त्तक माने जाते हैं। कश्मीर में उनकी पवित्र ज़ियारत पर हिन्दू-मुसलमान श्रद्धापूर्वक जाते हैं। कहते हैं जब वह उत्पन्न हुए तो माँ का स्तनपान नहीं किया, फिर ललद्यद ने कह कर स्तनपान कराया—"जब तुम पैदा होने में नहीं शरमाये तो स्तनपान करते हुए क्यों शरमाते हो ?' इन्होंने धर्म का वास्तविक स्वरूप लोगों के सामने रखा और सदाचार पर ज़ोर दिया। इनका कलाम 'शुक' (संस्कृत के 'श्लोक' शब्द का विकृत रूप) कहलाता है। एक-एक शुक में इन्होंने धर्म-दर्शन की व्याख्या की है। शेख नूरद्दीन सत्य-मार्ग को दर्शाते हुए कहते हैं—

साहिबो केंह गयि चाने वेरि,
केंह गयि ज़ेरि अकि गुमराह।
केंचन कबरि छि पोश ज़न शेरि,
केंचन कबर छि स्याह चाह॥

अर्थात् हे भगवान, कुछ तो तुम्हारे रास्ते गये—तर गये, कुछ बेचारे ज़रा-सी भूल के कारण गुमराह हो गये। कइयों की कब्रें पुष्पों से महक उठीं और कइयों की कब्रों में काली दरारें पड़ गई हैं। कलियुग के बढ़ते हुए पाप की ओर संकेत करते हुए शेख नुरुद्दीन कहते हैं—

यिन गरा त गछन्य गरा,
लरि तल म्यच त वुरनि म्यच।
लदिथ छुनिथ वोगन्य लरा,
कल्य हम मरख त ति कस किच॥

अर्थात् आना घड़ी-भर और जाना घड़ी-भर, बिछौना मिट्टी और ओढ़ना मिट्टी, फिर हे बन्दे मृत्यु का विचार न करके यह जो तूने लम्बा चौड़ा भवन तैयार किया है वह किसके लिये। इन दोनों के काव्य में शैव दर्शन, सहजोपासना, पाखण्ड प्रतिरोध,

आध्यात्मिक साधना तथा आडम्बर त्याग का प्रतिपादन हुआ है। दोनों ही हिन्दू तथा मुसलमानों में समान रूप से श्रद्धा के पात्र हैं ।

कवियत्री हब्बा खातून (१५५१-१६०५ ई०) ने कश्मीरी प्रेम-गीतों को जन्म दिया। इनके प्रेम-गीतों में करुणा है, वेदना है, दुःख है। इनके गीतों में संयोग और वियोग श्रृंगार की हृदयभेदिनी भाववृत्तियों का सुन्दर चित्रण है। इनके गीतों में जो संताप और दर्द है वह अन्यत्र नहीं मिलता। हब्बा खातून की सास और पति दोनों मिलकर इसे सताया करते थे। अपने ससुराल के कष्ट को हब्बा-खातून ने इस प्रकार व्यक्त किया—

हशि लायनम टोपिसय थक,
सुय में गोम मरन खोत सख।
यन्द्रपचि प्यठ न्यन्द्र प्येयमो,
चखर फुटमो मालिनो हो ।।
वारिव्यन यत्य वार छस नो,
चार कर म्योन मालिनो हो ।

अर्थात् चर्खा कातते-कातते मेरी आँख लग गई जिससे चर्खे की माल टूट गई। सास ने मेरी चोटी ज़ोर से खींची, जिसकी पीड़ा मृत्यु से भी बढ़कर थी। ससुराल में मैं सुखी नहीं हूं, मेरा उद्धार करो मेरे मायके वालो। एक दिन हब्बा खातून अपने खेत में काम करते हुए कोई कश्मीरी गीत गा रही थीं कि कश्मीर के सुलतान यूसुफ़ शाह चक वहाँ से गुज़रे; वे हब्बाखातून की मीठी आवाज़ पर मुग्ध हो गये और इसके पति से इसे तलाक दिलवाई। इसके बाद हब्बाखातून मलिकाये-कश्मीर बनकर शाहाना जिंदगी गुज़ारने लगी।

'छकरी', 'भांडपाथर', 'रोफ', और 'वनवुन', कश्मीरी संगीत के जनप्रिय रूप हैं। 'छकरी' में स्त्रियों का मनोराग आभासित होता है। छकरी संगीत में स्त्री ही सत्वर प्रेमिका का अभिनय करती है। छकरी की विशेषता यह है कि गीत छोटे और भावपूर्ण होते हैं। इसके लिए साधारण वाद्य-यन्त्रों 'मटका, 'तुम्बक नारी', 'सारंग' और 'रबाब', 'संतूर' का प्रयोग किया जाता है। जिस प्रकार भारतीय संगीत में तबले का प्रयोग किया जाता है, उसी प्रकार 'मटके' का प्रयोग कश्मीरी संगीत के लिए किया जाता है। 'तुम्बक नारी' एक सुराही के समान है जिसका गला लम्बा होता है और पेंदे पर बकरे का चमड़ा चढ़ा देते हैं, बजाने पर ढोलक की तरह स्वर प्रदान करता है। 'सारंग', सारंगी का ही एक छोटा-सा रूप है लेकिन इसके स्वर सीमित हैं, इनके स्वरों को विस्तृत किया जा सकता है। इसके दो तार होते हैं एक को 'बुम' कहते हैं, दूसरे को 'जिला'। कश्मीर में 'रबाब ४०० वर्ष पूर्व अफगानिस्तान से आया और कश्मीरी संगीत का एक आवश्यक अंग बन गया। यह सरोद जैसा ही यन्त्र है। एक ओर यन्त्र है 'संतूर' जिसका कश्मीरी शास्त्रीय संगीत सूफियाना कलाम में प्रयोग होता है। यह सूफियाना कलाम अक्सर फ़ारसी में गाया जाता है। इस पर रहस्यवाद और आध्यात्मिकता की गहरी छाप है। संतूर का नाम फारसी शब्द 'सन' से लिया गया है। इसका अर्थ है 'सौ' और 'तूर' का अर्थ है 'तार'। नृत्यकला और संगीतकला को अलग नहीं किया जा सकता। हिन्दू शासकों के राज्यकाल में नृत्य के लिए प्रगति का समय था। कश्मीर के लोकनृत्य अधिक नहीं पनप सके क्योंकि कश्मीरी महिलाओं ने नर्तकी के पेशे को नहीं अपनाया। वह गृहस्थ जीवन को अधिक प्रिय समझती हैं। 'भांडपाथर' संस्कृत के दो शब्दों 'भाण' और 'पात्र' से बना है।

जिसका अर्थ है हास्य व्यंग्य प्रधान हाव-भाव एवं अन्य प्रकार की शारीरिक चेष्टाओं से किसी स्थिति का अभिनय करना। भांड कुशल कलाकार हुआ करते थे। अफ़गान और सिक्ख शासनकाल में यह कला पूर्णतया नष्ट हो गई। प्रभावपूर्ण वेशभूषा, भाव-भंगिमा, कटाक्ष आदि से ये किसी भी सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक विषय को सुरुचिपूर्ण ढंग से लोगों के सामने प्रस्तुत करते थे। 'शहनाई', 'ढोल' और 'नगारा' साज़ ही इसमें काम आते हैं। 'रोफ़' नृत्य कश्मीरी महिलाओं को प्रिय हैं। कश्मीर का सबसे सुन्दरतम् सामूहिक नृत्य यही है। 'ईद' और 'रमजान' के अवसर पर औरतें अवसर गाती दिखाई देती हैं। 'ईद' के अवसर पर औरतें कुछ इस प्रकार 'रोफ़' करती नज़र आती हैं—

ईद आयि रस-रस, ईदगाह वसवै, ईदगाह वसवै।
ईद आयि सौरान, कौने छव नेरान, कौने छव नेरान॥

अर्थात् ईद धीरे-धीरे आ गई, चलो ईदगाह चलें। अब ईद का दिन समाप्त हो रहा है, तुम घर से बाहर क्यों नहीं निकलती हो? 'वनवुन' कश्मीरी महिलायें शादी व्याह के अवसर पर सामूहिक रूप में दुल्हे के आगमन पर इस प्रकार गाती हैं --

छदिये ओवुय खानय मोलुय,
नेरिसी रोनि मंजोलुय ह्यथ।
सोन सिजि सदरे रोप सिजि कछवचि
यहै छई मोगल बचि वार वनिवतोस॥

अर्थात्, दादी, तुम्हारा लाडला आया है। घुंघरू लगे हुए हिंडोले को लेकर जा और उसका स्वागत कर। इसके सोने के कुरते की, चाँदी की आस्तीन है, यह तो मुगलों का बच्चा-सा लगता है। इसके स्वागत में तू दिल खोल कर गा ले।

और दुल्हन के लिए इस प्रकार गाते हैं—

मदनी मदनस कोठ है लूस वदनी,
मदनी घर फिन कदमा चाव।

अर्थात्, तुम्हारा दूल्हा तो थक गया इन्तज़ार करते-करते, अब तो घर से बाहर आ।

कश्मीर के शाल यहां के सौंदर्य के प्रतीक हैं। यहां के लोगों की कला कौशल प्रशंसनीय है। कश्मीरी शाल अनेक प्रकार के मिलते हैं, लेकिन इनके दो वर्गीकरण समझे जाते हैं—'कानी' शाल, जो हाथ-करघे से बुनी जाती है और 'अमली' शाल, जो पश्मीने पर कढ़ाई की गई होती है। यू तो शालों पर कसीदाकारी के बहुत से नमूने काढ़े जाते हैं लेकिन 'बादाम' का नमूना बहुत ही पुराना और लोकप्रिय है। मुग़लों के ज़माने में शालों पर सोने और चाँदी के तार से कढ़ाई होती थी। समय-समय पर इस उद्योग में बहुत से उतार-चढ़ाव आए। मुगलों के राज्यकाल में पश्मीने के इतने सूक्ष्म शाल बनते थे कि अंगूठी से भी गुज़र जाते थे। इन्हें 'रिंग शाल' कहते थे। पूरी दुनिया में इनकी माँग थी। ईरानी कालीनों की दो किस्में प्रचलित थीं। एक छः फुट लम्बा और तीन फुट चौड़ा और दूसरा अढ़ाई फुट चौड़ा और १५ से २० फुट लम्बा। कश्मीर में भी पहले-पहले ऐसे ही कालीन बनते थे, लेकिन विदेशों में बढ़ती माँग के कारण, बड़े कालीन बनाने का रिवाज़ चला।

'पेपरमाशी' की कला भी कश्मीर में ईरान से आई। इसके बनाने का तरीका अलग है। कागज़ को गला कर कूटा जाता है और उसे लकड़ी के सांचे के ऊपर मढ़ा जाता

है। सूखने पर साँचे का रूप धारण कर लेता है और फिर इस की सफाई करके, इस पर रंगीन चित्र बनाये जाते हैं। पेपरमाशी की अनेक सुन्दर चीज़ें बनती हैं, जैसे 'फूलदान', 'बिजली के शेड' आदि, आदि। कश्मीर की सबसे मजबूत और सुन्दर, अखरोट की लकड़ी है। इस समय कश्मीर में लकड़ी का काम बहुत बड़ा उद्योग बन गया है। अखरोट की लकड़ी की मेज़, कुर्सी, संदूक आदि बनाकर, इन पर नक्काशी की जाती है। लकड़ी पर बेल-बूटे खोदने की कला में यहां के कारीगरों को महारत प्राप्त है। यहाँ की 'जालीदार' नक्काशी संसार भर में प्रसिद्ध है।

कश्मीर का रहन-सहन, खान-पान और वेश-भूषा अत्यन्त साधारण है, लेकिन अन्य प्रदेशों से पृथक है। यह एक लम्बा चोगा-सा पहनते हैं, जिसे 'पयरन' कहते हैं। कुर्त्ता, पाजामा और गोल टोपी इन लोगों की आम पोशाक है। 'कांगड़ी' का प्रयोग सर्दियों में मुख्य रूप से किया जाता है। यह वहनीय अंगीठी रूपी कांगड़ी, मिट्टी के बड़े प्याले के समान पात्र 'कौण्डुल' से बनती है। इसके ऊपर वेद की पतली टहनियों का 'फ्रेम' सा बुना जाता है। 'फ्रेम' मिट्टी के पात्र से ५-६ इंच ऊँचा रहता है। इसका उपयोग केवल कश्मीर में ही किया जाता है। कुछ विदेशी पर्यटकों ने यह अवधारणा फैला रखी है कि कांगड़ी को गले में लटकाते हैं। लेकिन यह गलत है कांगड़ी को दोनों हाथों से या एक हाथ से पकड़े रहते हैं। काफी लाभदायक होने के अतिरिक्त कांगड़ी लोककला का भी एक सुन्दर नमूना है। मुसलमान स्त्रियां पयरन, कुरता, सलवार और सिर पर 'कसाब' पहनती हैं। लाल कपड़े की छोटी तहें चढ़ाने से छोटी पगड़ी जैसी बन जाती है, उसे कसाब कहते हैं। परतों में सूइयां लगा कर बन्द कर लेती हैं। इसका उपयोग गाँव की हिन्दू और मुसलमान महिलायें अधिक प्रयोग करती हैं। कश्मीरी पंडितों की पयरन लम्बी होती है। यह चूड़ीदार पाजामा और कमीज़ पहनते हैं। पंडिताइन का पयरन रंगीन होता है। इसकी किनारी पर लाल डोरी लगाई जाती है। आजकल यह पहनावा नहीं रहा। हिन्दू-मुसलमान कोट पैंट पहनते हैं। पंडिताइनें सलवार कमीज़, साड़ी का प्रयोग करती हैं। पयरन का रिवाज़ आहिस्ता-आहिस्ता कम होता जा रहा है। सर्दी हो या गर्मी बारह माह यहाँ के लोग चावल खाते हैं; चावल के साथ कोई भी सब्ज़ी हो, निःसंकोच उस का प्रयोग करते हैं। इसी पर यहाँ के लोग निर्वाह करते हैं। ठंडी, जलवायु में रहते हुए भी यहाँ के लोग शराब आदि मादक वस्तुओं का सेवन नहीं करते। सर्दी से निर्वाह के लिए 'कहवा' और 'नमकीन चाय' ही पीते हैं। 'समावार' में चाय कई-कई घण्टों तक गर्म रहती है। यहाँ के लोगों का रंग गोरा है और इनकी सेहत भी अच्छी होती है। यहां के लोग अधिकतर व्यापारी हैं। ६० प्रतिशत जनसंख्या या तो जल-वासी है या फिर जल से अपनी जीविका अर्जित करती है। डल-झील में तैरते हुए हाऊस बोट अति सुन्दर लगते हैं। हाऊस बोट, में रहने वालों को 'हअंज' कहते हैं। इनके हाऊस-बोट कीमती और सुसज्जित होते हैं।

कश्मीर की संस्कृति भावात्मक एकता और धर्म-निरपेक्षता पर आधारित है। यहां पारस्परिक सौहार्द और धार्मिक सहिष्णुता की केसर-गन्ध चारों ओर बिखरी हुई है। कश्मीर की संस्कृति में जो समन्वय और धर्म-निरपेक्षता के भाव पाये जाते हैं; वह भारतीय संस्कृति के ही विशिष्ट रूप को अभिव्यंजित करते हैं। □

महाकवि जगद्धरभट्ट तथा उनका काव्य

☐ डा० विद्या शर्मा

कश्मीर भारत के उत्तर में मुकुट के रूप में विराजमान है । प्रकृति ने अनुपम सौन्दर्य से इसे विभूषित तो किया ही है, साथ ही सरस्वती देवी की भी कश्मीर पर अपार कृपा है । आरम्भ से ही इस वादी ने अनेक ऋषियों, मुनियों एवं विद्वानों को जन्म दिया है, जिन्होंने अपनी अपूर्व लेखनी से कश्मीर को कीर्ति के शिखर पर पहुंचा दिया है। इन्हीं विद्वानों में महाकवि जगद्धरभट्ट का नाम भी बड़े सम्मान से लिया जाता है ।

महाकवि जगद्धरभट्ट कश्मीर में भारद्वाजगोत्र वाले ब्राह्मण-वंश में उत्पन्न हुए थे । इसके पितामह गौरधरभट्ट तथा पिता रत्नधर कश्मीर के प्रकाण्ड पण्डित थे । ऐसे उच्च संस्कारों वाले वंश में उत्पन्न जगद्धरभट्ट पर भी देवी सरस्वती की अपार कृपा थी । इनका पुत्र यशोधरभट्ट था । उच्च ब्राह्मणकुल में जन्म लेकर जगद्धरभट्ट ने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था । वेदों, पुराणों एवं स्मृतियों का भी इन्हें अपूर्व ज्ञान था । सदाशिव के प्रति भक्ति एवं कविता-प्रेम तो इसकी वंश-परम्परा से ही चला आता था । ज्ञानवान होते हुए भी यह विनम्र, सहृदय, मधुरभाषी तथा निर्मत्सर था जिससे सिद्ध होता है कि विद्वान् होते हुए भी इनमें अहंकार का लेशमात्र भी नहीं था । यही सच्चे विद्वान् और गुणी के लक्षण हैं ।

महाकवि जगद्धरभट्ट ने केवल दो ग्रन्थों की रचना की है—बालबोधिनी तथा स्तुतिकुसुमांजलि । 'बालबोधिनी' एक व्याकरण ग्रन्थ है जिसकी रचना कवि ने अपने पुत्र को शिक्षा देने के लिए की थी । 'स्तुतिकुसुमांजलि' शिवस्तुतियों से सम्बद्ध एक भक्तिपरक काव्य है । कवि ने इस काव्य की रचना संस्कृत भाषा में की है । इसकी लिपि कश्मीर की प्राचीन, प्रसिद्ध तथा प्रचलित शारदा लिपि है । इन ग्रन्थों के अतिरिक्त सुभाषितावलि में जगद्धरभट्ट के नाम से कुछ पद्य प्रकाशित हुए हैं जिससे स्पष्ट है कि इस कवि ने या तो किसी अन्य ग्रन्थ की रचना की होगी अथवा कुछ मुक्तक पद्य लिखे होंगे । चाहे कुछ भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि जगद्धरभट्ट एक उच्चकोटि के कवि थे, जिन्होंने स्तुति-कुसुमांजलि नामक विशाल काव्य की रचना की है ।

वस्तुत: स्तुति का अर्थ प्रशंसा अथवा स्तुत्य के गुणों का वर्णन है । समस्त सद्गुणों का आगार एकमात्र ईश्वर ही है । इसी सर्वगुण सम्पन्न ईश्वर को प्रसन्न करने के लिए उसकी स्तुति की जाती है । इसी अर्थ का व्यापक रूप 'स्तोत्र' से पाया जाता है । "स्तव: स्तोत्रं स्तुतिर्नुति:"[1] के आधार पर ये सभी शब्द एक ही अर्थ के द्योतक हैं। महाकवि जगद्धरभट्ट ने भी सदाशिव की स्तुति में ही इस विशाल ग्रन्थ की रचना की है जिसका 'स्तुति कुसुमांजलि' नाम रखा है अर्थात् स्तुति रूपी पुष्पों की अंजलि से उसने सदाशिव की प्रशंसा की है । उसने अपने काव्य के प्रत्येक सर्ग के नाम के साथ 'स्तोत्र' शब्द का प्रयोग किया है। अत: स्पष्ट है कि उसने प्रत्येक स्तोत्र को कुसुम मानकर उनकी अञ्जलि अपने इष्टदेव सदाशिव के प्रति अर्पित की है । शिव-स्तुति-विषयक ग्रन्थों में इस महाकाव्य को ऊंचा स्थान प्राप्त है । यदि इस महाकाव्य को स्तोत्रकाव्य कहा जाये तो अनुचित नहीं होगा ।

स्तुति कुसुमांजलि काव्य में अठतीस स्तोत्र हैं, जिनमें १४२३ श्लोकों की रचना की गई है । अन्तिम सोलह श्लोकों में कवि ने अपना और अपने वंश का परिचय स्वयं दिया है। उपर्युक्त सभी श्लोकों में कवि ने सदाशिव की भक्ति एवं स्तुति का सुन्दर प्रदर्शन किया है । स्तुति के अतिरिक्त सहृदयों को इन पद्यों से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूप चारों पुरुषार्थ प्रदान होते हैं । इन पद्यों के रचने से कवि को तो सन्तोष एवं अक्षय पुण्य की प्राप्ति हुई ही है पर इनमें परसुखाय भावना भी निहित है क्योंकि इन स्तुति-कुसुमों के सौरभ से सहृदयों का मन मुग्ध होता है ।

सम्पूर्ण महाकाव्य में शिव-विषयक स्तुतियाँ हैं। साथ ही कवि इन पद्यों से सदाशिव के स्वरूप-वैशिष्ट्य, भक्त के आत्मनिवेदन व प्रभु-प्रसादन, उपदेश और काव्य-शैली के विविध तत्वों को दर्शाने में भी सफल हुए हैं । सदाशिव को ही सब देवों में श्रेष्ठ समझते हुए कवि ने कहा है कि वह सृष्टि के लिए ब्रह्मारूप जगत् का पालन करने के लिए विष्णुरूप एवं जगत् का संहार करने के लिए रूद्ररूप धारण करता है। उसके तीन नेत्र क्रमश: अग्नि, चन्द्रमा और सूर्य हैं । कवि की दृष्टि में सदाशिव ही चेतन और अचेतन में भिन्न रूप से प्रज्ज्वलित होता है—

"एकमेव चिदचित्स्वनेकधा यच्चकास्ति, तदुपास्महे मह:" ।[2]

वही सदाशिव ही इस नामरूपात्मक जगत् में मायातत्व के द्वारा भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है—यथा—

"स्वावभासमयमेव मायया येन भिन्नमवभास्यते जगत्" ।।[3]

इस काव्य में कवि का स्पष्ट संकेत है कि सदाशिव ही इस संसार में ऐसा आनन्द-स्वरूप है जिसके इच्छामात्र से यह सारा संसार स्फूर्तिमय रहता है अत: प्राणी को अपने दुर्लभ जीवन में उस सदाशिव के प्रति भक्ति अवश्य करनी चाहिए । कवि स्वयं प्रभु की भक्ति में लीन होकर याचना करता है कि वह मुक्ति नहीं चाहता अपितु भक्ति में ही आसक्त होना चाहता है । उसकी दृष्टि में मुक्ति प्रभुभक्ति में बाधक है—

---

१. अमरकोश, प्रथम काण्ड, ६ अध्याय, सूत्र ११, पृ० ६७ ;

२. स्तुति कुसुमांजलि—१ : ८ पृ० ८ ;

३. स्तु० कु०—१ : १० पृ० ९ ;

"मुक्तिर्हि नाम परमः पुरुषार्थ एक--
स्तामन्तरायमवयन्ति यदन्तरज्ञाः" ।।[1]

इस काव्य में कवि ने यह भाव स्पष्ट किया है प्रभु-भक्ति में भी प्रत्येक प्राणी लीन नहीं हो सकता। यदि ईश्वर की कृपा हो तो ही प्राणी भक्ति कर सकता है अन्यथा नहीं—

"नानुग्रहस्तव विना त्वीय भक्तियोगं
नानुग्रहं तव विना त्वीय भक्तियोगः" ।।[2]

अर्थात् भक्ति और प्रभु के अनुग्रह का परस्पर कार्यकारण भाव है क्योंकि भक्ति के बिना प्रभु का अनुग्रह सम्भव नहीं होता और प्रभु के अनुग्रह के बिना भक्ति की सम्भावना नहीं होती। इस बात की पुष्टि विद्वान् और दार्शनिक व्यावहारिक पक्ष में भी नियमितः करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि अनेक दार्शनिक तथ्यों की पुष्टि जगद्धरभट्ट ने अपने काव्य में दृष्टान्तों द्वारा की है और कहा है कि स्वर्गसुख को ही मुक्ति मानने वाले जीव मन्दबुद्धि हैं, वास्तविक सुख तो भक्ति में प्राप्त होता है।

स्तुतिकुसुमांजलि में महाकवि जगद्धरभट्ट ने सदाशिव को ही एकमात्र उपासना का आधार माना है। उसका सदाशिव स्तुत्य है, वही स्तुति भी है और वही स्तोता भी है। इस दार्शनिक तथ्य को निम्न पद्य से सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया गया है—

"स्तुत्यस्त्वमेव स्तुतिकृत्वमेव स्तुतिस्त्वमेव त्वहतेऽस्ति नान्यत्।
इयं त्वविद्या यदहं स्तुवे त्वां स्तुत्येति मिथ्या पृथगर्थबुद्धिः" ।।[3]

वास्तव में सदाशिव ही असली रूप है, वही स्तोता भी है, स्तुत्य भी है और स्तुति भी, परन्तु अविद्या के कारण वह विभिन्न रूपों में जीव को दिखाई देता है। जीव तथा परमात्मा के मिलन से यह तथ्य सिद्ध होता है। अतः ईश्वर सेवन ही सर्वश्रेष्ठ है। यह प्रभुस्तुति एक असाधारण रसायन है, और समुन्द्र-मन्थन के बिना ही अमृत-प्राप्ति के समान है। इसी प्रभु-स्तुति से कल्पवृक्ष के समान परमानन्द रूपी फल की प्राप्ति होती है।

सदाशिव से सम्बन्धित अनेक पौराणिक कथा-प्रसंग तो प्रायः सभी जानते हैं, पर इस काव्य में कवि ने कहीं-कहीं इन कथाओं का प्रसंगवश संकेत किया है और कहीं प्रभु की महानता दर्शाने के लिए पूरी कथा का विवरण प्रस्तुत किया है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सदाशिव रूपी नायक पर ही स्तुतिकुसुमांजलि काव्य आधारित है। नायक के साथ-साथ पार्वती भी नायिका के चरित्र को निभाती है। कवि ने भक्ति के माध्यम से सदाशिव से इतनी आत्मीयता प्राप्त की है कि उसे प्रभु तथा देवी को साधारण पति-पत्नी के रूप में वर्णन करने में कोई हिचकिचाहट नहीं होती है। उनके कृत्य, उनकी लीलायें तथा उनके आचरण में किसी प्रकार की असम्भावना देखने को नहीं मिलती है। पर साथ ही सदाशिव के विशेष गुणों के प्रति भी कवि मूक नहीं। उनका सदाशिव एक ओर से अपने तृतीय नेत्र से कामदेव को भस्म कर देता है तो दूसरी ओर यही सदाशिव तपस्या में लीन पार्वती की परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मचारी का रूप धारण करता है। साधारण जामाता की तरह ससुर दक्ष के द्वारा यज्ञ में न बुलाये जाने पर वह दक्ष का संहार करने में नहीं चूकता, और अपने ही पुत्र गणेश का आज्ञा-पालन न किये जाने पर सिर धड़ से अलग कर

१. स्तु० कु०—३ : ४४ पृ० ४४ ;
२. स्तु० कु०—९ : ३३ पृ० १२७ ;
३. स्तुति कुसुमांजलि—१२ : २ २४० ;

देता है। असुरों का संहार करने वाला सदाशिव भक्त की प्रत्येक याचना को स्वीकार कर उसे अभय प्रदान कर देता है। अतः प्रभु किसी सीमा के अन्तर्गत नहीं होता है। वह स्वतन्त्र है और स्वच्छन्द रूप से प्रत्येक कार्य करता है।

इस स्तुति काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इस काव्य में यद्यपि प्रभु की स्तुति ही प्रधान है, पर कवि ने अपने इष्टदेव शिव के विभिन्न रूपों का भी ज्ञान कराया है। उसका सदाशिव विराट एवं परब्रह्म है, वही ज्योतिस्वरूप है, वही ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश—तीनों रूपों में प्रकट होता है तथा वही पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा तथा यजमान—इन आठ मूर्तियों में भी अभिव्यक्त होता है। कवि ने उसके हरिहर (विष्णु तथा महादेव) स्वरूप तथा अर्धनारी (उमा तथा शिव) स्वरूप को भी पहचाना है। वही शरणागतवत्सल, दुष्टनाशक और पार्वतीवल्लभ भी है। सबसे अधिक प्रशंसा के योग्य प्रभु का स्वच्छन्द एवं स्वतन्त्र रूप है। पर यह सदाशिव सभी रूपों में अपने भक्त को प्रिय एवं आनन्ददायी लगता है।

महाकवि कश्मीर में जन्मा है, पला है तथा उसने इस महान् कृति की रचना भी यहीं की है। स्वभावतः कश्मीर के शैवदर्शन का प्रभाव उस पर अवश्य पड़ा है। अतः इस काव्य में कश्मीर के शैवदर्शन की झलक यत्र-तत्र दिखाई देती है। 'ओम्' नाद की उत्पत्ति प्रायः प्रत्येक प्राणी के अन्तःकरण में स्वतः ही होती है।[1] महाकवि ने भी 'स्तुति कुसुमांजलि' में परमशिव को नादस्वरूप बताया है। सभी वाणियाँ उसी परमशिव से उत्पन्न होती हैं। उसका स्वरूप 'ओम्' से लक्षित होता है। 'स्तुतिकुसुमांजलि' काव्य में वर्णित सदाशिव का स्वतन्त्र एवं स्वच्छन्द रूप दार्शनिक सिद्धान्त "स्वतन्त्रः कर्त्ता"[2] को द्योतित करता है जिसके अनुसार सदाशिव कुछ करने, न करने तथा विपरीत करने में समर्थ होता है। उपनिषद् के "एको वशी......एकं रूपं बहुधा यः करोति"[3] वाक्य के आधार पर इस स्तोत्रकाव्य में भी कवि ने भाव को स्पष्ट किया है कि परमात्मा अपने आपको जगत् के विविध रूपों में परिणत करता है। अपनी स्वातन्त्र्यशक्ति से ही वह अनहोनी को होनी में बदलता है। अपने स्पन्दमात्र से ही वह जगत् का आविर्भाव तथा तिरोभाव करता है—ऐसा करने में वह किसी नियम का परवश नहीं है—यही बात दार्शनिक तथ्य—"स्वेच्छया स्वभित्तौ विश्वमुन्मीलयति'[4] से भी पुष्ट होती है।

सम्पूर्ण काव्य में यद्यपि स्तुतियों का ही आधिक्य है, पर कवि ने अपनी काव्यशैली से भाव को प्रत्येक पद्य में नवीनतम रूप प्रदान किया है। कवि ने इस काव्य में ओज, प्रसाद एवं माधुर्य तीनों गुणों का प्रयोग कर इसे सत्काव्य बनाने का प्रयास किया है जिसमें वह सफल हो गया है। भक्तिभाव से भरे उद्गारों को प्रकट करने के लिए जहां कवि ने माधुर्य गुणयुक्त वैदर्भी रीति तथा प्रसादगुणयुक्त पांचालो रीति का प्रयोग किया है वहां कुछ स्तोत्रों में चित्रकाव्य रचना कौशल को भी प्रकट किया है। उसकी शैली कहीं लघु समास अथवा समासरहित वैदर्भी और पांचाली रीति के रूप में प्रकट होती है तो

---

१. साम्बपंचाशिका—प्रथम श्लोक।
२. पाणिनी अष्टाध्यायी – प्रथम अध्याय, ४ पाद, ५४ सूत्र ;
२. स्वच्छन्दतन्त्र; सप्तम पटल, २६१ पद्य ;
३. कठोपनिषद्—१२ अनुवाक्।
४. प्रत्यभिज्ञाहृदयं—सूत्र २ ;

कहीं दीर्घ समासों से बोझिल ओजगुण से युक्त गौड़ी रीति के रूप में कवि के पाण्डित्य को प्रदर्शित करती है। तीनों गुणों व तीनों रीतियों की उपस्थिति होते हुए भी इस काव्य में माधुर्यगुणयुक्त वैदर्भी रीति की ही प्रधानता है। इस काव्य में शब्दालंकार एवं अर्थालंकार दोनों का सफल प्रयोग हुआ है, विशेषकर यमक तथा उपमा अलंकारों का अधिक प्रयोग है। इस काव्य के दोनों पक्ष—भावपक्ष और कलापक्ष-प्रबल हैं। अतः इसे यदि महाकाव्यों की कोटि में रखा जाये तो कोई अत्युक्ति नहीं। ऐसे काव्य का रचयिता कोई साधारण व्यक्ति नहीं अपितु प्रकाण्ड पण्डित, वैयाकरण और भावुक है जो बिना किसी साधारण कथावस्तु के इस विशालकाय ग्रन्थ को रचने में सफल हुआ है। अतः इस महाकाव्य तथा महाकवि जगद्धरभट्ट की जितनी भी प्रशंसा की जाये, कम होगी।

□

(१९८६ ई० में साहित्य अकादमी द्वारा पुरुस्कृत कश्मीरी साहित्यकार श्री नादिम पर विशेष लेख)

आशाओं का कवि दीनानाथ कौल 'नादिम'

□ डॉ० भूषणलाल कौल

२०वीं शताब्दी के कश्मीरी साहित्य में अध्यापक-वर्ग का अविस्मरणीय योगदान रहा है। स्वर्गीय अब्दुल अहद आज़ाद एवं मास्टर ज़िन्दा कौल जैसे प्रतिभासम्पन्न कलाकारों ने कला-साधना के साथ-साथ जीविका-निर्वाह के हेतु अध्यापन-कार्य किया और इसी परम्परा की अगली कड़ी के रूप में कविवर नादिम का नाम उल्लेखनीय है।

पण्डित दीनानाथ कौल 'नादिम' का जन्म एक निम्न मध्यवर्गीय परिवार में १८ मार्च सन् १९१६ ई० को श्रीनगर में हुआ। दुधमुहें बच्चे पर विधाता का पहला प्रहार था—इनके पिता पण्डित शंकर कौल का सन् १९२२ ई० में असमय निधन। विधवा माँ सुख सुन्दरी (सोन्दर द्यद) ने अपने खूने जिगर की एक-एक बूँद पिला-पिलाकर दीना नाथ का पालन पोषण किया। मैट्रिक की परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् कुछ समय तक वे एस० पी० कॉलेज श्रीनगर में पढ़ते रहे लेकिन अपनी माँ के संघर्षमय जीवन से प्रेरित होकर तुरन्त रोज़गार की तलाश में निकल पड़े, कई वर्ष प्राइवेट ट्यूशन पढ़ाते रहे और अन्त में एक प्राइवेट स्कूल में अध्यापक नियुक्त हुए। अध्ययन और अध्यापन का काम साथ-साथ चलता रहा, पंजाब विश्वविद्यालय से बी० ए० की परीक्षा पास करने के बाद सन् १९४९ ई० में बी० टी० की परीक्षा भी पास की।

दीनानाथ का संघर्षशील मानस प्रतिकूल परिस्थितियों से टकरा-टकरा कर तथा यथार्थ के विष घूंट पी-पी कर परिपक्वता की मंज़िलें पार करता हुआ अपनी भीतरी अकुलाहट को व्यक्त करने लगा। तत्कालीन राजनीतिक संघर्ष के साथ इस प्रबुद्ध युवक का सम्बन्ध जुड़ जाना स्वाभाविक था। सन् १९३८ ई० में वे सक्रिय रूप से आन्दोलन में सम्मिलित हुए और इसी वर्ष सितम्बर के महीने में उन्हें कारावास मिला। कारण था—राजनीतिक मंच से अपनी जोशीली उर्दू रचनाओं का कविता-पाठ। आरम्भ में दीनानाथ उर्दू में रचनाएँ लिखते थे।[1] लेकिन सन् १९४६ ई० में उन्होंने विधिवत् कश्मीरी भाषा में

१. "मज़दूर का ख्वाब', 'मज़दूर की मौत' तथा 'मेरा कश्मीर' शीर्षक (उर्दू) रचनाएँ मैंने इन्हीं जलसों में पढ़ लीं। फलतः पुलिस मुझे पकड़ कर ले गई। घर की तलाशी हुई और मेरी समस्त रचनाएँ ज़ब्त की गईं।"
'शिहिल कुल'—दीनानाथ नादिम—प्रकाशन सन् १९८५ ई०
'जानकारी : स्रोत की'—नादिम—पृ० ३४

लिखना शुरू किया और पिछले चालीस वर्षों से वे निरन्तर अपनी काव्य-साधना में लीन रहे हैं। सन् १९४६ ई० में ही मिर्ज़ा गुलाम हुसन बेग आरिफ के निमंत्रण पर वे पहली बार एक कवि-सम्मेलन में शामिल हुए और अपनी सर्जनात्मक-प्रतिभा से उन्होंने श्रोताओं के मानस पर अमिट छाप छोड़ी।[1] पिछले चालीस वर्षों में नादिम साहब का सम्बन्ध प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय-स्तर पर कई शैक्षणिक, साहित्यिक-सांस्कृतिक एवं राजनीतिक संगठनों तथा संस्थाओं के साथ रहा है। इस प्रकार लेखक तथा अध्यापक होने के साथ-साथ नादिम एक समर्पित राजनीतिक कार्यकर्ता, कुशल प्रबन्धक एवं अनुभवी परामर्शदाता के रूप में काफी ख्याति प्राप्त रहे हैं। नादिम का साहित्यिक व्यक्तित्व बहुमुखी है। कवि[2] होने के साथ-साथ एक कहानीकार[3], गीति-नाट्य लेखक एवं सम्पादक[4] के रूप में भी उनका योगदान अमूल्य रहा है। यद्यपि पिछले चालीस वर्षों में उनकी रचनाएँ यत्र-तत्र पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहीं लेकिन सन् १९८५ तक उनका कोई भी काव्य-संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ—न किसी संस्था की ओर से, और न ही निजी रूप में कवि की ओर से। यही कारण है कि नादिम की कला का उचित मूल्यांकन आज तक न हो सका। अपने काव्य व्यक्तित्व के प्रति इस उपेक्षित व्यवहार के लिए 'नादिम' स्वयं उत्तरदायी हैं। सन् १९८५ ई० में 'शिहिलकुल'[5] शीर्षक से नादिम ने अपनी प्रतिनिधि रचनाओं का संग्रह जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी की वित्तीय सहायता से प्रकाशित कराया जिसे गत वर्ष अर्थात् १९८६ ई० में साहित्य अकादमी ने राष्ट्रीय स्तर पर कश्मीरी भाषा की श्रेष्ठ काव्य-रचना के रूप में पुरस्कृत किया। जो आज से लगभग दो दशाब्दी पूर्व होना चाहिये था उसे कल होते देख सन्तोष तो प्राप्त होता है, लेकिन विशेष हर्ष नहीं। इस महान कवि को सन् १९७१ ई० में सोवियत देश ने 'सोवियत लैण्ड नेहरू पुरस्कार' से सम्मानित किया और सन् १९८५ ई० में उन्हें प्रथम 'कल्हण-एवार्ड' से भारत के राष्ट्रपति ने विभूषित किया। जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी ने वर्षों पहले अपने उत्तरदायित्व को समझकर

---

१. रचना का शीर्षक था—'मुवरावि व्रर तय दारि व्यसी, सोन्त हय सालि आव'

—लेखक

२. मेरी पहली नज्म (कश्मीरी) 'मोज कशीर' है। यह नज्म मैंने १९४० ई० में लिखी और दो क़िस्तों में 'प्रताप' मैगज़ीन में छपी है।......इसके बाद मैंने १९४६ ई० तक कश्मीरी में कोई चीज़ नहीं लिखी।'
'नीलजा'—नादिम विशेषांक—सन् १९८३-८४ ई०
—'नादिम अपनी नज़रों में—पृ० १८

३. 'जवाबी कार्ड' शीर्षक कहानी नादिम ने सन् १९४८ ई० में लिखी है। 'शीनि प्यतो प्यतो' नादिम की दूसरी कहानी है।

४. नादिम ने तीन पत्रिकाओं का सम्पादन किया है। 'कोंग पोश', 'उस्ताद', एवं 'गाश'। इनमें 'कोंग पोश' एक विशुद्ध साहित्यिक पत्रिका थी। —लेखक

५. सर्वप्रथम सन् १९६२ ई० में नादिम ने 'शिहिल कुल' शीर्षक से एक कविता लिखी। तत्पश्चात् इसी भाव पर आधारित संगीत रूपक 'शिहिल कुल' का मंचन सन् १९६८ ई० में पहली बार श्रीनगर में हुआ।
अंत में सन् १९८५ में प्रकाशित एक मात्र काव्य-संग्रह का नाम भी नादिम ने 'शिहिल कुल' रखा।

—लेखक

२९ मई सन् १९७४ ई० को नादिम साहब के सम्मान हेतु एक विशिष्ट 'स्वागत-समारोह' का आयोजन किया।

'नादिम' साहब आज भी अपनी साधना में सक्रिय हैं। अपने लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए उन्होंने कहा है—'मेरी ज़िन्दगी की सबसे बड़ी आरज़ू यह है कि मैं हर एक को हँसता हुआ देखूँ'[1] —इन शब्दों में नादिम का जीवन-सत्य मुखर हो उठा है।

नादिम ने कई संगीत रूपक अथवा गीति-नाट्य भी लिखे जिनमें 'बोम्बुर यम्बरज़ल', 'नीकी-बदी', 'शिहिल कुल', 'सफर ते शेहज़ार', 'व्यथ' (वितस्ता) तथा 'मदनवार ते ज़ुवलमाल' उल्लेखनीय हैं। श्री नूरमुहम्मद रोशन के संग, मिलकर उन्होंने सन् १९५६ ई० में 'हीमाल नागराय' गीति-नाट्य की रचना की है।

नादिम वस्तुत: अपने युग की उपज है और युगीन परिस्थितियों तथा विभिन्न आन्दोलनों ने उनके व्यक्तित्व के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निबाही है। आरम्भ में ही महाकवि इक़बाल और चकबस्त की प्रभावशाली रचनाओं में 'नादिम' के भीतर देश प्रेम की चिनगारी सुलगा दी थी[2]। अभावग्रस्त जीवन के संकटमय क्षणों की कटु अनुभूतियों ने नादिम को जहाँ अपने आपके प्रति सचेत किया वहाँ साथ ही साथ वे राष्ट्रीय स्तर पर भी जन सामान्य की दीनहीन स्थिति से अवगत होकर विचलित हो उठे। उनके मानस में देश प्रेम की ज्वाला भड़क उठी। राष्ट्रीय और अन्तर राष्ट्रीय स्तर पर घटित होने वाली घटनाओं ने नादिम के चिन्तन को एक नई दिशा प्रदान की। रूस की सफल जन क्रान्ति, जलियाँवाला बाग हत्याकांड, भगतसिंह तथा उनके दो सहयोगियों की ब्रिटिश साम्राज्य-वादियों द्वारा निर्मम हत्या, द्वितीय विश्व-युद्ध, 'भारत छोड़ो' आन्दोलन (सन् १९४२ ई०), 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन (सन् १९४६ ई०), सन् १९४७ में स्वतन्त्रता प्राप्ति के साथ-साथ देश-विभाजन एवं कश्मीर पर विदेशी आक्रमण आदि घटनाओं के फलस्वरूप नादिम का जीवन्त कवि सक्रिय हो उठा। उत्कट देश-प्रेम को अपनी रचनाओं का मूलाधार बनाकर 'नादिम' सृजन की प्रक्रिया में प्रवृत्त हुए। मातृ-भूमि के प्रति अनन्य अनुराग, अभाव-ग्रस्त जीवन के परिणाम स्वरूप देशवासियों की शोचनीय दशा, दारिद्रय एवं भुखमरी तथा जन आक्रोश से उत्पन्न विद्रोह को कवि ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान की। इस युग की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं :—'मातृ भक्त', 'मुचि रावि वर तय दारि व्यसी, सोन्त हय सालि आव', नाराए-शबाब' (म्य छुम ताज़ि यावुन, म्य छुम ताज़ि यावुन), नाराए-इंकलाब' (कशीरि हुन्द चि शान बन, चि मीरि कारवाँ बन, कशीरि पासबान बन), ग्राव, 'कशीरि हुन्द दावा' (मिलिचारि सूत्य दुनियाम्य छुम यकसान बनावुन ; म्यछु ह्योन्द ते मुसलमान बेयि इंसान बनावुन) तथा 'सोविज़' आदि।

इसके पश्चात् नादिम की देशभक्ति की विचारधारा में समाजवादी चिन्तन का प्रवेश हुआ। प्रसिद्ध कम्यूनिस्ट कामरेड धन्वन्तरि[3] से प्रभावित होकर नादिम साम्यवाद के

---

१. 'दीनानाथ नादिम अभिनन्दन ग्रन्थ' —सन् १९८५ ई० प्रकाशक : जम्मू कश्मीर राष्ट्र भाषा प्रचार समिति, श्रीनगर—पृ० २४

२. वही—पृ० १९

३. 'सन् १९४९ ई० में मेरी मुलाकात प्रसिद्ध क्रान्तिकारी कम्यूनिस्ट धन्वंतरि से श्रीनगर में हुई। ......मैं सन् १९५१ में कम्यूनिस्ट पार्टी का सदस्य बना।' 'नीलजा'—नादिम विशेषांक—पृ० २०

सिद्धान्त को काव्य मंत्र के रूप में ग्रहण कर तथा कश्मीर में तरक्की-पसन्द लेखक संघ का सदस्य बन कर एक विशिष्ट राजनीतिक आन्दोलन के प्रवाह में प्रवाहित हुए। नादिम ने साम्यवादी चिन्तन को जीवन-दर्शन के रूप में ग्रहण किया और यहीं वे 'आज़ाद' से दो कदम आगे निकल आते हैं। कश्मीरी कविता में प्रगतिवादी काव्य के क्षेत्र में आज़ाद के बाद नादिम का योगदान अभूतपूर्व रहा है। सन् १९४९ से सन् १९५८ तक नादिम समाजवादी चिन्तन से प्रभावित और प्रेरित होकर काव्य-साधना में लीन रहे।[1] इस युग में नादिम ने पूर्ण वेग और उत्साह के साथ वर्ग-विभाजित समाज की रुग्ण-परम्पराओं की ज़ंजीरों को तोड़ डालने की बात कही और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के हेतु लाल क्रान्ति का आह्वान किया।

वर्ग-संघर्ष की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने शोषित, अपमानित एवं दलित जन-मानस में गहरे उतर कर उसकी भीतरी उथल-पुथल, आशा-निराशा, व्यथा-वेदना, जय-पराजय को काव्य-वाणी प्रदान की। इस प्रकार जन सामान्य का स्वप्न लोक नादिम की रचनाओं में साकार हो उठा और कश्मीरी काव्य में प्रगतिवादी आन्दोलन निश्चित उद्देश्य एवं लक्ष्य के साथ निश्चित दिशा की ओर अग्रसर हुआ। इस युग में 'नादिम' ने निम्न-लिखित उल्लेखनीय रचनाएँ लिखी हैं :—

(i) 'यरादि'—(वुशुन वुशुन वोज़ुल वोज़ुल, वोज़ुल वोज़ल वुशुन वुशुन........
बोज़ुल वुशुन छु खून म्योन)

(ii) 'प्रिछुन छुम'—(त मगरूर सरमायिदारन प्रिछुन छुम प्यठ बानि वयन नव
वहारन प्रिछुन छुम)

(iii) 'सोन्त त हरूद' (iv) 'व्वग्यवि न अज़' (v) 'म्य छम का'म बाकी'
(vi) 'म्य छम आश पगहिच' आदि।

अन्य भाषाओं के समान ही कश्मीरी भाषा में भी प्रगतिवाद अल्प आयु में ही जवाँ मर्ग हो गया और नादिम की कविता विकास के तीसरे मोड़ की ओर अग्रसर हुई। कई विदेशी चिन्तन-प्रणालियों से प्रभावित होकर स्वातंत्र्योतर स्वप्न-भंग की स्थिति ने आज के कलाकार को अपने ही भीतर सिमट कर सोचने के लिए विवश कर दिया। अपने मानस की गहराई में उतर कर कवि निजी अनुभवों को नये सांचों में ढालने के हेतु नवीन प्रयोग करने लगा। कवि का निजी चिन्तन नवीन प्रतीकों एवं बिम्बों के द्वारा अभेद्य आवरण में व्यक्त होने लगा। इस प्रकार काव्य की प्रयोगशाला में सौन्दर्य को तलाशने का नया प्रयोग आरम्भ हुआ। अपनी काव्य-यात्रा के इस नये मोड़ की सूचना देते हुए स्वयं नादिम ने कहा है :—'मेरी शायरी को नया मोड़ १९५८ ई० से आरम्भ होता है। जब मैंने 'नाबद ते ट्यठव्यन' नज़म लिखी। इस नज़म को मेरी शायरी और कश्मीरी शायरी में एक संगमील का दर्जा प्राप्त है। शायरी में एक तबदीली आने के बावजूद भी तरक्की पसन्दी की किरणें आज भी उन लोगों की शायरी में फूटती है जो तरक्की पसन्दी से

१. 'इन कविताओं में उत्पीड़ितों की आकांक्षाओं को वाणी देने का और मानव यातना के बिम्ब को उभारने का प्रयत्न है। वस्तुतः कश्मीरी कविता को नादिम की यह एक बड़ी देन है कि उन्होंने उसकी विषयभूमि का विस्तार किया और उसे सामाजिक यथार्थ के प्रति संवेदनशील बनाया।'
'कश्मीरी साहित्य का इतिहास' —डॉ० शशि शेखर तोषखानी, जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी द्वारा सन् १९८५ ई० में प्रकाशित—पृ० २६८

सम्बद्ध रहे हैं। इन लोगों के साथ मेरा नाम भी आता है।[1] इस प्रकार 'नादिम' की सर्जनात्मक यात्रा का तीसरा पड़ाव है—प्रयोगवाद। 'नाबद ट्यठव्यन' नादिम की एक प्रयोगात्मक रचना है जिसमें उन्होंने विशिष्ट राजनीतिक मोर्चे के तंग दायरे से बाहर निकल कर विशुद्ध अनुभूति के स्तर पर सौन्दर्य बिम्बों की सृष्टि की है। यहाँ गहन-चिन्तन और मार्मिक अनुभूति दोनों मिलकर बिम्ब उबारने में अथवा विशिष्ट अनुभूतियों के प्रभाव की सृष्टि करने में सक्रिय दिखाई देते हैं।[1] इसी प्रकार की अन्य उल्लेखनीय रचनाएँ हैं—'लखचि छु लखचुन', 'का'ठिदरवाज़ि प्यठि गरिताम', 'वुनल', 'का'फि ते ज़ो'लि', 'छट', 'हा'रिसात', 'शिहिल कुल', 'टावाह-टावाह' आदि।

नादिम की सर्जनात्मक प्रक्रिया का अगला मोड़ है—नई कविता। प्रयोगों के शीश-महल से बाहर निकल कर अब वह विशुद्ध अनुभूति के स्तर पर जीवन के कटु यथार्थ को भोगता-झेलता साधना-रत दिखाई दे रहा है। आज मानव मूल्य न केवल बदल गये हैं अपितु खंडित भी हुए हैं। स्वप्न टूट चुके हैं और यथार्थ अपने घिनौने रूप में नग्न-नृत्य करता हुआ दिखाई दे रहा है। मानव कहीं आकाश के वक्ष को चीर डालने का साहस प्रदर्शित कर रहा है और कहीं सड़ान्ध में पड़े-कीड़े के समान चुलबुला रहा है। रिश्ते करवटें बदल रहे हैं और परम्परागत विश्वासों को तर्क के फन्दों में लटकाया जा रहा है। महा-नगरों की स्थिति कम्प्यूटर-युग की तूफानी चाल का एहसास दिला रही है। आज स्वयं अपने अस्तित्व का प्रश्न मानव मन को अशान्त कर रहा है। 'नादिम' जैसा युगद्रष्टा कवि इन द्वन्द्वात्मक स्थितियों से अप्रभावित कैसे रह सकता था। उन्होंने व्यक्ति के स्तर पर अपनी भावानुभूतियों को गहन चिन्तन की सान पर चढ़ा दिया। वस्तुतः जीवन के बदलते रूपरंग उन्हें वैचारिक स्तर पर भी और सर्जना के क्षेत्र में भी अपनी ओर आकर्षित करते हैं। आधुनिकता को एक नया काव्यात्मक और वैचारिक रवैया (चलन, प्रथा) स्वीकारते हुए उन्होंने कहा है—'(आधुनिकता) हाँ! वैचारिक रवैया है और इसे होना भी चाहिये। इसकी ज़रूरत भी है। क्योंकि इकहरी (एक परत की) शायरी तक हम सीमित नहीं रह सकते। ज़रूरत है कि नये वैचारिक रवैया और दृष्टिकोण को साथ लेकर हम चलें किन्तु इसमें मानव जीवन के उद्देश्य को नज़र-अन्दाज़ नहीं होना चाहिये। हम अपनी तनहाई की

---

१. 'नीलजा' (नादिम विशेषांक)—पृ० २०

* नादिम के इस कथन के अन्तिम वाक्य से सम्बन्धित लेखक की टिप्पणी :—
यही कारण है कि नादिम सन् १९६१ ई० में लिखित अपनी रचना 'डल बठि बठि' में लिखते हैं :—

यिम बंगलि छि आसन वा'लि यिहुन्द दुनिया छु अलग
हुम पाहरि छि जख्मन क्र'ालि यिहुन्द दुनिया छु अलग
अडि आ'किल अडि यति चा'रि चि पख हलपा'रि लगै
च्यति वाती कुनि विज़ि वा'रि चि पख हुलपा'रि लगै।

'यह बंगले (आलीशान भवन) पैसे वालों के हैं, इनकी दुनिया ही अलग है। वे झोंपड़ियाँ ज़ख्मों पर पड़ी पपड़ियां हैं, इनकी दुनिया भी अलग है। यहाँ आधे बुद्धि-मान हैं, आधे मूर्ख—तू आगे बढ़, शाबाश! तुझ पर निछावर। कभी तुम्हारी भी बारी आ जायेगी। तू आगे बढ़, शाबाश! तुझ पर निछावर।' 'शिहिलु कुल'—'डल बठि बठि'—पृ० ९२

तलाश में तनहा न रह जाएं।'[1] नई कविता के काव्यान्दोलन से प्रेरित होकर नादिम ने कई रचनाएँ लिखी हैं जिनमें उल्लेखनीय हैं—'सयन्दि वानि ठहर', 'सुति ओस दोहा', 'समझौति', 'आ'नि—ज़िन्दगी हुन्द', 'कथबाथ', 'जंगुल', 'हकायथ', 'ज़िन्दगी यीच वसी', 'दोद', 'हे होश करिव', 'हुंगि मंगि वुनि वुनि', 'आवाज़न हुन्द माने', 'लोकिचार, यावुन त बुजर' आदि।

दीनानाथ नादिम के सम्पूर्ण व्यक्तित्व, कला और चिन्तन के विकास में यहाँ की सांस्कृतिक सम्पदा का विशेष योगदान रहा है। रूसी साम्यवाद से प्रभावित होकर भी नादिम अपनी परम्परा से कट कर कभी अलग नहीं हुए। उन के विचार-अनुसार नवीनता अथवा आधुनिकता का अभिप्राय प्राचीनता का पूर्ण बहिष्कार नहीं अपितु प्राचीन संस्कृति में निहित प्राणदायक तत्त्वों के आधार पर जीवन की पुनर् व्याख्या है। नादिम ने अपनी लोक संस्कृति के असीम भण्डार से ऐसे मौक्तिक ढूंढ निकाले जिन की आभा से उनकी काव्य रचनाओं में निखार आ गया है। इस दृष्टि से उन के लोक-नाट्यों में 'व्यथ' का उल्लेख करना संगत होगा जहां वितस्ता के प्रति भावात्मक अनुराग को व्यक्त करते हुए कवि इसे शाश्वत-जीवन के प्रतीक के रूप में स्वीकार करते हैं।[2] नादिम साहब कश्मीर के लोक-जीवन से भी पर्याप्त प्रभावित हुए हैं। यहाँ की लोक कथाओं, लोक-विश्वासों, लोक नाट्यों एवं लोक गीतों के प्रति उन्हें अनन्य, अनुराग है। लोक गीतों की शैली पर उन्होंने 'डल हांज़न्य हुन्द ग्यवुन'[3] एक मन-मोहक कविता लिखी है। उन के अधिकांश गीति नाट्यों में लोक-रस की धारा अत्यन्त वेग के साथ प्रवाहित हुई है।

अभिव्यक्ति के क्षेत्र में नादिम ने कश्मीरी कविता को बहुत कुछ दिया है। कश्मीरी भाषा में चतुर्दशपदी गीत (सॉनेट) सब से पहले नादिम ने लिखे। अत्यन्त संक्षिप्त आकार में एक विचार खण्ड को प्रस्तुत करके नादिम ने कविता के सामूहिक प्रभाव को तीव्र एवं मर्मस्पर्शी रूप में मूर्त्त करने का प्रयास किया है।

'नादिम' साहिब पर यह आक्षेप लगाया जाता है कि वे अनावश्यक रूप से अपनी

---

१. 'दीनानाथ नादिम अभिनन्दन ग्रन्थ'—सन् १९८५ ई०—पृ० २२।

२. 'व्यथ' (वितस्ता) अन्य गीत नाट्यों की भाँति ही एक संगीत रूपक है। वास्तव में यह मेरे जीवन की शाश्वत कहानी है। मैं मरण में विश्वास नहीं करता। मेरी जीवन में आस्था है—शाश्वत जीवन में—और यही आस्था और विश्वास 'वितस्ता' रूपक रचना का प्रेरक बन गया।'
'दीनानाथ नादिम अभिनन्दन ग्रन्थ'—सन् १९८५ ई०—पृ० २९।

३. ताजि ताज़िम्य अनिमय डलि हय—हय वलै हय वलै हय वलै हय
फुलियि वांगन ति पा'रिमि अलि हय—हय वलै हय वलै हय वलै हय
मरचि वांगन तिं वांगन छि व्योन-व्योन—मस मलरि हिय वांगन छि—व्योन-व्योन
नावि मंज छी करान डोलि डोलि हय—हय वलै हय वलै हय वलै हय
—'डल झील से मैं ताज़ा (सब्ज़ियां) लेकर आई हूं। अरी आ जाओ। चली आओ, चली आओ। छोटे छोटे बैंगन और गोल लौकी। अरी आ जाओ! चली आओ, चली आओ। मिर्चें और बैंगन अलग-अलग हैं। मदिरा-कलश सदृश (अंगूरी रंग) के बैंगन अलग हैं। नाव में परस्पर ठेल-ठेली में लगे हैं। चली आओ, चली आओ।' 'शिहिल कुल'—नादिम—पृ० ८३।

रचनाओं में इतने काव्य-प्रयोग तथा अनियंत्रित शब्द-प्रयोग भर देते हैं कि खरा सोना भी खोटा प्रतीत होता है[1] । व्यक्तिगत रूप से मैं इन विद्वत् जनों से सहमत नहीं हूँ क्योंकि मेरा दृढ़ विश्वास है कि 'नादिम' ने प्रत्येक काव्य-प्रयोग में अपनी असाधारण प्रतिभा का आश्चर्यजनक प्रमाण दिया है । यह दूसरी बात है कि आधुनिकता के मोह-पाश में बन्ध कर वे जन मानस से कट कर बौद्धिक-समाज तक ही सीमित रह गये ।

सॉनेट के साथ-साथ नादिम ने ब्लैंक वर्स एवं आज़ाद नज़्में (अतुकान्त कविताएं)[2] भी लिखी हैं और इस प्रकार कश्मीरी भाषा की नवीन अभिव्यक्ति की क्षमताओं के प्रति स्थानीय साहित्य-समाज को सचेत किया । इन लघु कविताओं में हमें नादिम की अद्भुत सर्जनात्मक शक्ति का परिचय मिलता है । इस प्रकार नादिम नये प्रयोगशील कवियों के के रूप में हमारे सामने आये[3] ।

इस में सन्देह नहीं कि नादिम भाषा के धनी हैं । शुद्ध मौलिक तद्भव कश्मीरी शब्द-प्रयोग स्वातंत्र्योत्तर-युग में नादिम की रचनाओं में सबसे पहले देखने को मिलते हैं । कवि ने अत्यन्त सहजता एवं स्वाभाविकता के साथ आम जन-समूह में प्रचलित शब्दावली को काव्य-भाषा के रूप में व्यवहार में लाया । जीवन के हर क्षेत्र से उन्होंने शुद्ध कश्मीरी तद्भव शब्दों को चुना और जौहरी की कला से उन में अर्थ-अभिव्यक्ति का निखार उत्पन्न किया । शब्दों के परम्परागत तथा प्रचलित अर्थ के बदले उन्होंने शब्दों को नवीन अर्थ-प्रसंगों में ग्रहण किया । कहीं ये प्रतीकात्मक रूप में व्यवहृत हुए और कहीं अपने साथ जुड़े सांस्कृतिक सन्दर्भों को व्यक्त करने के हेतु सांकेतिक रूप में प्रयोग में लाये गये हैं । 'नादिम' शब्दों की अन्तरात्मा से परिचित हैं । बिम्बों और प्रतीकों की सृष्टि में उन्होंने अपनी सद्भावना शक्ति और सर्जनात्मक प्रतिभा का भरपूर उपयोग किया है ।[4] यहां कल्पना तर्क के सान पर चढ़ कर निखर उठी है । नादिम की कविताओं के आकर्षण का एक कारण उन की लोक-भाषा है जो नवीन सन्दर्भों में अपनी क्षमताओं का बोध कराते हुए व्यक्त हुई है । श्री मोती लाल साकी के कथनानुसार 'नादिम' को कश्मीरी भाषा पर जो अधिकार प्राप्त है वह बहुत कम कश्मीरी कवियों में देखने को मिलता है ।[5] तथा

---

१. 'जदीद क'शिर शायरी'—सन् १९८२ ई०—डॉ० हामिदी—पृ० १०२ (१०२)

२. 'आप इस बात से पूर्णतयः परिचित हैं कि मैंने कश्मीरी में पहली बार आज़ाद नज़्म, ब्लैंक वर्स, सॉनेट और ओपेरा लिखा है ।' —नादिम
'नीलजा'—नादिम विशेषांक—सन् १९८३-१९८४ ई०—पृ०—१९ ।

३. 'आधुनिक कश्मीरी कविता के जन्मदाता यदि 'महजूर' हैं तो नयी कश्मीरी कविता के जन्मदाता दीनानाथ 'नादिम' । सन् १९४७ के बाद जब प्रथम बार कश्मीरी कविता के विषय तथा शैली में नये प्रयोग हुए तो 'नादिम' इन नये प्रयोगशील कवियों के अगुआ के रूप में हमारे सामने आये...... ।'
—वेदराही
'दीनानाथ नादिम अभिनन्दन ग्रन्थ'—पृ०—८२ ।

४. 'शब्दों के आन्तरिक संगीत के प्रति वे खास तौर पर जागरूक रहे हैं और बिम्बों और प्रतीकों की सृष्टि में वे जिस कदर मौलिक हैं, शायद ही कोई दूसरा कश्मीरी कवि होगा ।'
'कश्मीरी साहित्य का इतिहास'—डॉ० शशि शेखर तोषखानी—पृ०—२६९ ।

५. 'गाशिर'—मोती लाल साक़ी—प्रकाशन वर्ष—सन् १९७४ ई०—पृ०—२४९ ।

श्री मुहम्मद यूसुफ टेंग के विचारानुसार 'नादिम ने अपनी कल्पना शक्ति और प्रतिभा के द्वारा कश्मीरी भाषा में निहित अर्थ-अभिव्यक्ति की उन महान् शक्तियों को उजागर किया जो आज तक हमें ज्ञात नहीं थीं।'[1] निम्नलिखित काव्य पंक्तियों में व्यवहृत मौलिक शब्द प्रयोग देखने योग्य हैं :—

(i) तुलि क्याज़ि गुलन **ग्यूर** का'रिथ **माछतुलिर ग्वूर'**

'शिहिल कुल'—पृ० ५०

(ii) 'म्य छु बासान शायद **ओबरस तल वुज़मल ला'जि मस मुचिरावने'**

'शिहिल कुल'—पृ० ५९

(iii) ताज़ि ताज़ि म्य अनिमय डलिह्य, फूलियि वांगन ते **पा'रिम अलि ह्य'**

'शिहिलकुल'—पृ० ८३

(iv) 'च्यति वाती कुनि विज़ि वारि चि पख **हलपारि** लगै,
वा'थि गछिनय **बरन्यन ता'रि** चि पख **हल'पारि** लगै।'

'शिहिल कुल'—पृ० ९१

(v) 'बिजली बति अंदि अंदि **मोहि जोराह**
वीगिस प्यठ **माहरण्य माहराजा**
हुथ कुलि शीहलिस तल **टेंकिबटन्या**
वुनि द्रामिच **बोभि** किन्य **चोकि लिविथ**।'

'शिहिल कुल'—पृ० ९९

अर्थ गाम्भीर्य के साथ-साथ शब्दों के माध्यम से नाद-सौन्दर्य की सृष्टि करने में भी नादिम को अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है। संगीत नादिम की नस-नस में बसा है। उन के गीति-नाट्य इस तथ्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। लोक संगीत की मधुर-लय को आत्मसात करके नादिम अपने विशिष्ट शब्द-प्रयोगों के माध्यम से काव्य और संगीत के मध्य समुचित संतुलन स्थापित करने में पूर्ण सफल हुए हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :—

गर-गर-गरारगर—गरर-गरर-द्रसि दिथ वसि वुनि आविमलर

गर-गर-गरारगर-गरर-गरर

रसि रसि छु करान आरि मचर—शर-शर-शराशर-शरार-शरर।

'शिहिल कुल'—'पांचादर'—पृ०—१३५

स्पष्ट है कि नादिम ने कश्मीरी कविता को परम्परागत रूढ़ काव्य-बन्धनों से मुक्ति दिलाई। छन्दोवद्धता का बन्धन तोड़ दिया और अपनी स्वतन्त्र काव्य-प्रकृति के अनुरूप नित नवीन प्रयोगों के द्वारा कश्मीरी कविता के अन्तर-बाह्य स्वरूप में अभूतपूर्व परिवर्तन उपस्थित किये। स्वर्गीय प्रो० काशीनाथ दर के शब्दों में :—

'कविवर' नादिम ने बदलते ज़माने के मिज़ाज और तकाज़ों के अनुरूप हमारे 'इयास' (अन्तरात्मा) की पुनर् व्याख्या करके इसकी महक और ताज़गी को सुरक्षित रखा है, यही युगधर्म 'नीलमत' से बराबर आज तक कवियों तथा मनीषियों द्वारा परवान चढ़ता आ रहा है।'[2]

भाव और भाषा की दृष्टि से नादिम की कला का उत्तरोत्तर विकास होता रहा।

१. 'दीनानाथ नादिम अभिनन्दन ग्रन्थ'—जम्मू कश्मीर कल्चरल अकादमी के मंत्री का संदेश—पृ०—१३।

२. 'नीलजा'—नादिम विशेषांक—सन् १९८३—८४ ई०—पृ०—६।

वे किसी विशिष्ट विचारधारा तक ही सीमित नहीं रहे और न ही उन्होंने परम्परा का अन्धानुकरण आवश्यक समझा। वे अन्तरमन की गहन अनुभूतियों को नित नवीन रंगों में प्रस्तुत करते रहे और प्रस्तुतीकरण के साधनों में भी उन्होंने रूढ़ बन्धनों की अवहेलना करके अपनी स्वच्छन्द प्रकृति का परिचय दिया है। उनकी काव्य प्रतिभा सदा विकासोन्मुख रही है। यही उनके जीवित होने का प्रमाण है। यहाँ प्रकृति के नाना रंगों की छटा है, पक्षियों की चहचहाहट है, अनुभूतियों की गहनता है, चिन्तन के प्रति तर्क प्रधान आग्रह है, श्रमिकों और कृषकों का विलाप मिश्रित विक्षोभ है, रक्त में उबाल है, सौन्दर्य के प्रति आकर्षण है और सब से बढ़ कर जीवन के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण। वस्तुतः नादिम की कविताओं में जीवन अपनी समस्त विविधताओं के साथ मुखर हो उठा है। स्वयं उन्हीं के शब्दों में :—

'मैं मरण में विश्वास नहीं करता। मेरी जीवन में आस्था है—शाश्वत जीवन में।'[1]

अत:

म्य छम आश पगहिच
पगाह शोलि दुनिया
दोहस गाश हुरि गुल त गुलज़ार प्रज़लन
ज़मीनस सिसर लगि त सब्ज़ार प्रज़लन
वछस मंज़ हुमिस लोलि फन्वार प्रज़लन
पगाह शोलि दुनिया
म्य छम आस पगहिच।[2]

'मुझे कल की आशा है, कल विश्व जगमगा उठेगा। दिन के प्रकाश में वृद्धि होगी, गुलोगुलज़ार महक उठेंगे। पृथ्वी का वक्ष कसमसाने लगेगा और सब्ज़ज़ार खिल उठेंगे। उस के वक्ष में प्रेम के फव्वारे प्रवाहित होंगे। कल विश्व जगमगा उठेगा। मुझे कल की आशा है।'

निस्संदेह नादिम का योगदान कश्मीरी साहित्य में संगे मील[3] की हैसियत रखता है।

□

---

१. 'दीनानाथ नादिम अभिनन्दन ग्रन्थ'—इंटरव्यू—(भेंट कर्ता: प्रो० चमन लाल सप्रू)—पृ० २९।
२. शिहिलकुल'—नादिम—'म्य छम आश पगहिच'—पृ० ६२।
३. 'नीलजा'—(नादिम विशेषांक)—''नादिम 'सन्तोष' की नज़रों में''—पृ०१५।

हिन्दी एवं डोगरी काव्य में राष्ट्रीयता

□ डा० जितेन ठाकुर

जब भारतीय मानस परतंत्रता के बंधनों में विदेशियों के पदाघात से त्रस्त, त्राहि-त्राहि पुकार रहा था तब देश-प्रान्त के कवि जागृति का शंखनाद करके उसकी भावनाओं को वाणी देने लगे। राष्ट्र, राष्ट्रहित, मुक्ति गौरव और राष्ट्र-प्रेम पर हिन्दी एवं डोगरी के जागरूक कवियों ने समान रूप से कलम चलाई है। राष्ट्र में अंग्रेजी शासकों के विरुद्ध जो मुक्ति युद्ध चल रहा था उससे प्रभावित होकर हिन्दी कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, गुप्त बन्धु, माखनलाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी, रामधारी सिंह दिनकर, मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण नवीन आदि ने राष्ट्रीयता का तीव्र एवं ओज भरा स्वर मुखरित किया। डोगरी कवि बाबा कांशीराम, रामनाथ, शास्त्री, दीनूभाई पंत, कृष्ण स्मैलपुरी एवं श्री हरदत्त आदि ने राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत काव्य का सृजन किया। डोगरी काव्य में राष्ट्रीयता की प्रबल धारा के ओजस्वी कवि के रूप में बाबा कांशीराम का एक विशिष्ट स्थान है। बाबा कांशीराम एक देशप्रेमी और समाज सेवी कवि थे। सन् १९२०-२५ में जब समस्त देश राष्ट्रीय कांग्रेस के आन्दोलनों से प्रेरित हो रहा था, उस समय बाबा कांशीराम गांधीवादी विचारों को डुग्गर प्रदेश की धरती पर गुंजा रहे थे। भारतेन्दु युग में जन-जागृति एवं राष्ट्रीय-प्रेम हिन्दी काव्य की केन्द्रीय भावना थी। उसी से सम्बद्ध विषय लोकहित, समाज-सुधार, मातृभाषा का उद्धार आदि थे। बाबा कांशीराम के काव्य में भारतेन्दु युग का स्वर प्रतिध्वनित होता है। अंग्रेज़ों द्वारा भारतीय सम्पदा की लूट से आहत होकर भारतेन्दु जी ने कहा :—

अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी ।
पै धन विदेश चलि जात यहै अति ख्वारी ।

बाबा कांशीराम भी अंग्रेज़ों की इस लूट के प्रति पूर्णतः जागरूक थे। आपने समस्त देश को जागरूक करने की चेष्टा की है :—

सुतेआ हिन्दिया जागन दी लोड़
सारा माल लुटी लेई गेय चोर ।
असां मरी कन्ने कमाया
जेड़ा लोकां ही खाया,
सांझो देसी निंह भाया
परदेशी गलें लाया ।

भारतेन्दु युग के कवि प्रताप नारायण मिश्र ने जन जागरण का सन्देश देते हुए लिखा :—

चहहु जु सांचहु निज कल्यान, तो सब मिली भारत सन्तान,
ज्यों निरन्तर एक जबान, हिन्दी-हिन्दु-हिन्दुस्तान ।

युग के इस सत्य को बाबा कांशीराम ने भी अनुभव किया और जन भावनाओं को आंदोलित करते हुए कुछ इस प्रकार लिखा :—

हुण मन्नों गलाया कांशी दा
डर रक्खो नीं तुसां फांसी दा,
असां लेना सुराज झट लोको ।

अंग्रेज़ों की शोषण नीति का भारतेन्दु ने अपने काव्य में स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है । भारतेन्दु ने व्यंगोक्तियों से देश के नवयुवकों को जागरण मंत्र देते हुए लिखा :—

भीतर-भीतर सब रस चूसे
हंसि-हंसि के तन-मन धन मूसै
जाहर बातन में अति तेज़
क्यों सखि साजन ! नहीं अंग्रेज ।

शोषण के विरुद्ध कुछ ऐसे ही भावों को बाबा कांशीराम ने भी स्वर प्रदान किया :—

सरकार बी डराये सांझो,
हाकम भी खाए सांझो,
नौकर बी दबाए सांझो
बेडियां बी पाए सांझो ।

भारतेन्दु युग की प्रमुख विशेषता यह है कि कवियों ने सामाजिक जीवन की उपेक्षा न कर जनता की समस्याओं के निरूपण की ओर पहली बार व्यापक रूप से ध्यान दिया । इसके पूर्व रीतिकाल में राजाओं और सामंतों के आश्रय में लिखे दरबारी काव्य में सामाजिक परिवेश के चित्रण की ओर नगण्य रूप से ध्यान दिया गया था । बाबा कांशीराम और अन्य डोगरी कवि भी सामयिक जीवन की समस्याओं के प्रति पूर्णतः जागरूक थे । भूख से बिलखती भूखी जनता का वर्णन करते हुए आपने लिखा :

निक्के-निक्के माहणुआं जो दुक्ख बड़ा भारा
मिलदी न रोटी किहया होना गुजारा ।
खाली पेट टब्बरे जो नींद नि औंदी
कदै सराणे सोये, कदी सोये पौंदी ।।

भारतीय अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ करने की कामना से भारतेन्दु युगीन कवियों ने स्वदेशी उद्योगों को प्रोत्साहन देने और स्वदेशी वस्तुओं को प्रयोग करने पर बल दिया । भारतेन्दु जी ने अपनी 'प्रबोधनी' शीर्षक कविता में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार की प्रत्यक्ष रूप से प्रेरणा दी है । इसी प्रकार प्रेमधन द्वारा 'आर्याभिनन्दन', प्रताप नारायण मिश्र की 'होली' और अम्बिकादत्त व्यास की 'भारत धर्म' शीर्षक कविताओं में विदेशी

वस्तुओं के बहिष्कार की प्रेरणा दी गई है। हिन्दी काव्य की इसी प्रवृत्ति का डोगरी में प्रतिनिधित्व करते हुए बाबा कांशीराम ने लिखा :—

छड़ो सब बदेशी
पहनो सब स्वदेशी,
हिन्द के हितेषी
गांधी दे संदेशी

भारतेन्दु युग के प्रमुख कवि प्रताप नारायण मिश्र अपने परतन्त्र देश की भूखी जनता की आहों से आहत होकर विगत का स्मरण करते हुए लिखते हैं :—

तबहि लख्यो जहं रहो एक दिन कंचन बरसत।
तहं चौथाई जन रूखी रोटी हु को तरसत।।

डोगरी कवि दीनूभाई पंत ने भी भूख से बिलबिलाती जनता की दशा का मूल कारण परतंत्रता ही माना है :—

परदेसे दे कुत्ते भरी-भरी ढिड्ड
मलाइयां खन्दे ओ।
साढ़े भा दा न्हेर फटी गेआ
भूखे मरदे बन्दे ओ।

हिन्दी कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने मुक्त कंठ से राष्ट्रीयता का शंखनाद किया। भारतेन्दु देश एवं देशवासियों की व्यथा से व्यथित होकर करुणानिधान प्रभु के समक्ष जाकर आहत स्वर में पुकार उठे :—

वहां करुणा निधि केसव सोए
जागत नहीं अनेक जतन करि
भारतवासी रोए!

डोगरी कवि हरिदत्त ने भी अपनी कविता "भारत माता दी श्री कृष्ण अग्गें प्रार्थना" में इस प्रकार की व्यथा प्रकट करते हुए लिखा है :—

मेरे देसे गी जगाई करी जाना महाराज,
बिगड़ी बनाई करी जाना महाराज।

डोगरी कवि बाबा कांशीराम ने भारतेन्दु युगीन कवियों की भांति एक और मध्यवर्गीय सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया तो दूसरी ओर रूढ़ियों का विरोध करते हुए विकास की आकांक्षाओं को भी अभिव्यक्ति प्रदान की। बाबा कांशीराम के काव्य में देश हित की ललक प्रबल रूप में विद्यमान रही। आपने प्रांतीयता की भावना से ऊपर उठकर राष्ट्रीय धारा से स्वयं को जोड़ा और अपने प्रदेश, अपने प्रांत को भी इसी मुख्य धारा में जोड़ने का प्रयत्न किया। अपने प्रदेश के पिछड़ेपन और कुरीतियों से कुंठित होकर आपने लिखा :—

उज्जड़ी गेआ हुण सारा
प्हाड़ी देश हमारा
दुनियां सारी पढ़ी-पढ़ी ज़ानी
पर न जागे असां अभागे

× × ×

हिन्दुआं दी मारी गई मत लोको
देस परमेसरा किह्यां बसना,
साढ़े घरां दियां रिस्मां खोटियां
लाड़े बड्डे लाड़ियां छोटियां।

समकालीन परिवेश के प्रति जागरूकता का जो स्वर हिन्दी में भारतेन्दु काल में मुखर हुआ, डोगरी में उसी परम्परा का निर्वाह बाबा कांशीराम के काव्य में दृष्टिगत होता है। इस प्रकार भारतेन्दु युगीन राष्ट्रीय काव्यधारा की ध्वनि, डोगरी काव्य में सर्वाधिक बाबा कांशीराम के काव्य में प्रतिध्वनित होती है। हिन्दी कवि माखनलाल चतुर्वेदी ने स्वतन्त्रता की कामना करते हुए अत्याचारी शासक के विरुद्ध विद्रोह के स्वर मुखर किये—

पापी शासन पर अप्रियता उपजान शांति संमत है।
शीघ्र अहिंसक असहयोग से मातृ भूमि होवे आजाद ॥

दीनूभाई पंत ने अपनी डोगरी कविताओं के माध्यम से गुलामी की प्रताड़ना से आहत भारत जन को जागरण का सन्देश दिया—

मरने कोला बी मंदा लोको
जीना इस गुलामी दा
× × ×
जिसने कदें बुआल नि खादा
ध्रिग-ध्रिग उस जुआनी दा।

हिन्दी कवि मैथलीशरण गुप्त, जयशंकर प्रसाद और दिनकर जी ने क्रमश: अपनी रचनाओं "भारत-भारती", "भारत महिमा" और "रेणुका" में तथा इसी प्रकार अन्य हिन्दी कवियों द्वारा भारत के गत वैभव के गीत गाए गए हैं। डोगरी कवियों में भी अपने स्वर्णिम अतीत के प्रति प्रेम दृष्टिगत होता है। गुप्त जी ने 'भारत-भारती" में देश की वर्तमान दशा पर शोकाकुल होते हुए विगत वैभव का स्मरण किया है :—

रहता प्रयोजन से प्रचुर पूरित जहाँ धन-धान्य था,
जो स्वर्ण-भारत नाम से संसार में सम्मान्य था ॥
दारिद्रय-दुर्ग अब वहाँ निरन्तर करता नृत्य है।
आजीविका-अवलम्ब बहुधा भृत्या का ही कृत्य है ॥

डोगरी कवि श्री रामनाथ शास्त्री ने इसी आशय को प्रकट करते हुए लिखा—

सोचो इस देसै देओ भोले परसानुओं!
अज्ज कियां मंदड़ा ए हाल जरो माहनुओ!
× × ×
गीतें च नराली प्हाड़ी, गीतें दी ओ तान ही
ए बंजर बनाइयां कियां केसर क्यारियां।

अतीत के गौरव के गायक प्रसाद जी ने अपने देश का अत्यन्त मनोरम चित्र खींचते हुए लिखा :—

अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहां पहुंचे अनजान क्षितिज को
मिलता एक सहारा।

डोगरी कवि दीनूभाई पंत ने भी अपने देश की सुन्दरता को अप्रितम बताया :—

मेरे दैसे दा शैलपा
मेरी अक्खी कन्ने दिक्ख ।

कृष्ण स्मैलपुरी तो अपने देश को स्वर्ग से भी अधिक सौन्दर्य सम्पन्न बताते हुए, स्वर्ग की चर्चा करने में भी उपेक्षा बरतते हैं । आपने अपने देश को अपने प्रेम एवं श्रद्धा के पुष्प कुछ इस प्रकार चढ़ाए हैं :—

सुरगै दी गल्ल नेईं ला अड़ेआ
जस्स अपने देसा दा गा अड़ेआ ।
ए देस फुल्लें दा खारा ई ।
ए देस असें अत्त प्यारा ई ।
ए साढ़ी अक्खीं दा तारा ई ।
ए त्रलोकी थमां न्यारा ई ।
तू एदा मान बधा अड़ेआ ।
सुरगै दी गल्ल नेईं ला अड़ेआ ।

नव प्रभात का शुभ सन्देश देते हुए, भारत के जन-जन के जागरण का प्रयत्न जयशंकर प्रसाद ने किया । स्वतन्त्रता से पूर्व एवं स्वतन्त्रता के पश्चात् भी, अनेक डोगरी कवियों द्वारा इसी आशय से नव प्रभात के आगमन को जागरण का प्रतीक माना गया । दीनूभाई पंत ने प्रभात का वर्णन करते हुए लिखा है---

उट्ठ म्हाड़ेआ देसा हुन लो हुई
दिक्ख चढ़ी गेआ ध्याड़ा
धुप्प लग्गी गेई धारा ।
मुंह कलियें खोले
बनें पक्खरू बोले ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी काव्य में राष्ट्रवाद का स्वर धीमा पड़ गया । परन्तु जब चीन और पाकिस्तान से भारत का युद्ध हुआ तब राष्ट्रवाद का स्वर पुनः मुखर हुआ । 'दिनकर' जी ने इस स्वर को जाज्वल्यमान किया :—

खोजो टीपू सुल्तान कहां सोए हैं ?
अशफाक और उस्मान कहां सोए हैं ?
बम वाले वीर जवान कहां सोए हैं ?
वे भगत सिंह बलवान कहां सोए हैं ?

डोगरी कवि भी ऐसे समय में देश के जवानों का मनोबल बढ़ाने वाली ओजपूर्ण रचनाओं का सृजन करने लगे । कवि अलमस्त ने सीमाओं पर युद्ध के लिए प्रोत्साहित करते हुए लिखा : —

उट्ठ वे उट्ठ बन्दूकड़ू चुक्क,
गलै च पाई लै रौंदे दे हार ।
छैल सुन्हाकड़ी बरदी बी लाई लै
बूट जराबड़ू पैरें फसाई लै ।

डोगरी कवियों में, दो स्तरों पर देश भक्ति दृष्टिगत होती है। एक अपने डुग्गर देश के प्रति दूसरी राष्ट्र के प्रति । परन्तु राष्ट्र के प्रति डुग्गर कवियों की जागरूकता कभी कम नहीं हुई। डुग्गर देश भक्ति को राष्ट्र-प्रेम की एक इकाई के रूप में स्वीकारा गया। राष्ट्र की दशा एवं जन समस्याओं ने डोगरी काव्य में पर्याप्त स्थान प्राप्त किया और डोगरी कवि राष्ट्रीय चेतना की धारा से कभी विलग नहीं हुए। यही कारण है कि हिन्दी कवियों की कविताएं जहां लिखे जाने के वर्षों बाद भी सामयिक प्रतीत होती हैं और आज के सामाजिक परिवेश की कसौटी पर खरी उतरती हैं, वहीं डोगरी कवितायें भी समय की निरंतर बदलती धारा के पश्चात् भी अपना पैनापन पूर्ववत् बनाए हुए हैं। उदाहरणार्थ आलस्य से होने वाली क्षति को अंकित करते हुए राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' ने लिखा था :—

भारत खंड का हाल जरा देखो है कैसा।
आलस का जंजाल जरा देखो है कैसा।

भारत की आज की दशा पर भी यह पंक्तियां उतनी ही चरितार्थ होती हैं, जितनी आज से वर्षों पूर्व होती थीं। ऐसी ही सामयिक महत्व की पंक्तियां हमें डोगरी कवि श्री हरदत्त की कविताओं में भी मिलती हैं :—

सारे देस सुत्ते दे जागे जगेआ सारा ज्हान ।
तूं सगुआ अग्गे कोला बी दित्ती लम्मी तान ।।

□

डोगरी तथा हिन्दी कहानी का समानान्तर मंच

□ डा० अशोक जेरथ

हिन्दी कहानी जब अपने उच्च सोपानों को तय कर रही थी तब डोगरी कहानी का जन्म हुआ था पर चूंकि बहुत से डोगरी कहानीकार पहले से ही हिन्दी में लिख रहे थे अतः डोगरी कहानी को प्रगति की सीढ़ियां लांघते देर नहीं लगी। हम यह नहीं कह सकते कि वह हिन्दी के समांतर चलने लगी पर यह अवश्य कहा जा सकता है कि डोगरी कहानी की प्रगतिशील धारा हिन्दी कहानी से बहुत पीछे नहीं थी। वेदराही साठ के दशक में योजना (जम्मू काश्मीर के सूचना विभाग द्वारा प्रकाशित) का सम्पादन कर रहे थे। उन्हीं दिनों जम्मू कश्मीर अकादमी द्वारा शीराज़ा (हिन्दी) का भी सम्पादन शुरू हुआ। सम्पादक नरेन्द्र खजूरिया डोगरी और हिन्दी के चर्चित कहानीकार रहे हैं। इनसे बहुत पहले हिन्दी के राष्ट्रीय स्तर के रचनाकारों के लिए एक मंच जम्मू से प्रकाशित होने वाली हिन्दी पत्रिका 'उषा' ने प्रदान किया। १९४३ से १९४७ तक प्रकाशित पत्रिका की इन पांच वर्षों की अवधि में डॉ० राम कुमार वर्मा, बच्चन, ठाकुर गोपाल शरण सिंह, गोपाल सिंह नेपाली, शिवमंगल सिंह "सुमन", निराला, प्रभाकर माचवे, भ्रमर, अज्ञेय, उदयशंकर भट्ट, हरि कृष्ण "प्रेमी", श्याम बिहारी शुक्ल, मोहन राकेश आदि रचनाकारों की रचनाएं स्थानीय रचनाकारों—जैसे पिपासु, दीनूभाई पंत, कुमारी कृष्णा कपूर, कुमारी शकुन्तला सेठ, राज तुली, चन्द्रकांत जोशी, जिज्ञासु, वीर वरेश्वर, आदि की रचनाओं के साथ छपती रही हैं। उपर्युक्त स्थानीय रचनाकारों में बाद में दीनूभाई पंत, पूर्णतया, डोगरी भाषा में साहित्य रचने लगे—इनके नाटक 'अयोध्या' को गत वर्ष साहित्य अकादमी ने पुरस्कृत किया है।

इस तरह बहुत पहले से ही सुश्री शकुन्तला सेठ द्वारा सम्पादित पत्रिका "उषा" द्वारा एक ऐसा मंच स्थापित हो चुका था जहां हिन्दी और डोगरी के रचनाकार अपनी अभिव्यक्ति कर सकते थे। वस्तुतः उन दिनों डोगरी में बहुत छुटपुट काम हो रहा था। बाद के दो दशकों तक कोई विशेष प्रगति इस दिशा में नहीं हुई जब तक कि सूचना विभाग द्वारा "योजना" और अकादमी द्वारा "शीराज़ा" का प्रकाशन शुरू नहीं हुआ। साईंस कालेज जम्मू द्वारा प्रकाशित पत्रिका "तवी" में हिन्दी और डोगरी की कहानियां छपती रहीं—वस्तुतः डोगरी कहानीकारों का जो कारवां बाद में उभरा उसका श्रेय बहुत

कुछ इन्हीं पत्रिकाओं को जाता है । वेदराही, नरेन्द्र खजूरिया, श्रीवत्स विकल गडोरी कहानियों के साथ-साथ हिन्दी कहानियां भी लिख रहे थे । इनकी कहानियां हिन्दी और उर्दू के समाचार पत्रों, पत्रिकाओं आदि में प्रकाशित होने लगी थीं । वेदराही तो आंचलिक हिन्दी कहानी के "आन्दोलन" के साथ जुड़ गए । राजेन्द्र अवस्थी, हिमांशु जोशी आदि आंचलिक कहानीकारों की रचनाओं के संग्रह में वेदराही की कहानियां भी संग्रहित थीं । बाद में डोगरी कहानी "दरेड़" एक सफल आंचलिक चलचित्र "दरार" बनकर अति चर्चित रही । वेदराही की रचनाएं धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दोस्तान, और सारिका के साथ-साथ अन्य कहानी पत्रिकाओं में स्थान पाने लगीं । इनकी अनेक डोगरी की कहानियां भी अनूदित होकर विभिन्न पत्रिकाओं में छपीं । नरेन्द्र खजूरिया का डोगरी कहानी संग्रह 'कोलें दियां लीकरां' अकादमी द्वारा पुरस्कृत पहला डोगरी कहानी संग्रह था, जिसकी अनेक कहानियां हिन्दी में भी अनूदित होकर विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं ।

सारिका ने दिसम्बर १९७० का विशेषांक डोगरी कथाकारों को समर्पित किया । इस अंक में डोगरी की विशिष्ट कहानियों को स्थान मिला । प्रत्येक कहानी के रचनाकार का संक्षिप्त परिचय हिन्दी जगत में प्रकाशित हुआ । इस संकलन में निम्नलिखित कहानियां प्रकाशित हुईं—भगवत् प्रसाद साठे द्वारा रचित 'मुंह दिखाई', धर्मचंद प्रशांत द्वारा रचित "चैंचलो", रामनाथ शास्त्री द्वारा रचित "गलत सौदा". नरेन्द्र खजूरिया द्वारा रचित "एक पत्ता पतझड़ का", ओम गोस्वामी द्वारा रचित "कब्र का पत्थर", छत्रपाल द्वारा रचित "शहतूत", ओ० पी० शर्मा 'सारथी' द्वारा रचित "घाव", चंचल शर्मा द्वारा रचित "नींव के पत्थर", मदनमोहन द्वारा रचित "पथरी", नरसिंहदेव जम्वाल द्वारा रचित "जमदर" और बन्धु शर्मा द्वारा रचित 'परछाईं' । इन डोगरी कहानियों के साथ-साथ अनेक डोगरी लोक कथाएं भी प्रकाशित की गईं जिनके माध्याम से इस प्रदेश की मानसिकता, संस्कृति और अपेक्षाओं की अभिव्यक्ति इस अंक के माध्यम से हुई है । सारिका के इसी अंक में सतीश जमाली की "थके हारे", आशीष सिन्हा की "घर", कामतानाथ की 'अन्त्येष्टि' आदि कहानियां भी "प्रकाशित हुईं" । इस तरह हिन्दी जगत के रचनाकारों, पाठकवर्ग और मनीषियों ने डोगरी कहानी का स्वरूप और परिचय पाया । किन्तु इन डोगरी रचनाकारों की बहुत-सी रचनाएं हिन्दी पाठक वर्ग के लिए अनजानी नहीं थीं—वेदराही, नरेन्द्र खजूरिया, ओम गोस्वामी, ओ० पी० शर्मा सारथी और छत्रपाल की अनेक कहानियां हिन्दी पत्रिकाओं में हिन्दी कहानी के तौर पर भी छप चुकी थीं ।

वेद राही की कहानी को सारिका के इस विशिष्ट अंक में नहीं लिया गया—कमलेश्वर सम्पादकीय में लिखते हैं—"हमने वेदराही को डोगरी के कथाकारों में नहीं लिया है, हालांकि वह डोगरी के विशिष्ट कथाकार हैं । उनकी "एह् पहाड़ मेरे नेईं", "आले", टैहलन कहानियां डोगरी कथासाहित्य में विशेष महत्व की कहानियां हैं । उन्हें यहां सम्मिलित न करने का मुख्य कारण यही है कि "सारिका" के पाठक उन्हें हिन्दी कहानीकार के रूप में ही अधिक जानते-मानते हैं ।"[1]

उपर्युक्त विशेषांक के इलावा सारिका अनेक बार डोगरी कहानियों को हिन्दी पाठक वर्ग के आगे प्रस्तुत करती रही है । भारतीय भाषाओं की पहली कहानी की खोजी शृंखला में भगदतप्रसाद साठे कृत 'पैहला फुल्ल' और बाद में ओम गोस्वामी का एक डोगरी

---

१. सारिका, दिसंबर १९७१ पृ० २३

कहानीकार के रूप में' उनका आत्म वृत्त भी छापा। ओम गोस्वामी की कई कहानियां सारिका में छपीं और बाद में कमलेश्वर द्वारा चलाए गए समान्तर कथा आन्दोलन के साथ भी वे जुड़े और उसके दो एक शिविरों में भी इन्होंने भाग लिया। इस तरह डोगरी कहानी का प्रतिनिधित्व वे एक दशक तक करते रहे हैं।

धर्मयुग, साप्ताहिक, कहानी, नई कहानी, मधुमती, जागृति, हिमप्रस्थ, पंजाब सौरभ, दैनिक ट्रिब्यून, जनसत्ता, नवभारत टाइम्स, भारतीय साहित्य, पंजाब केसरी आदि पत्र-पत्रिकाओं में डोगरी रचनाकारों की रचनाएं हिन्दी के विशिष्ट रचनाकारों के साथ-साथ छपती रही हैं। छत्रपाल द्वारा रचित "ललितादित्य के मार्त्तण्ड" धर्मयुग दिसम्बर १९७० अंक में छपने वाली उनकी पहली हिन्दी रचना थी बाद में कुछेक कहानियां और भी छपीं। ओम गोस्वामी सारिका के साथ-साथ साप्ताहिक में भी छपते रहे। इनकी कुछ डोगरी कहानियों के हिन्दी अनुवाद भी कई पत्रिकाओं में छपे। उषा व्यास "छवि" की कुछ रचनाएं साप्ताहिक में सीधे हिन्दी कहानी के रूप में प्रकाशित हुईं तो बन्धु शर्मा की कहानियां डोगरी से हिन्दी में होकर जागृति आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित हुईं।

उपर्युक्त कथाकारों में एक वर्ग ऐसा भी था जिसने हिन्दी में पहले लिखना शुरू किया था और उनकी पहली रचनाएं हिन्दी में ही छपीं—छत्रपाल ने हिन्दी में ही लिखना शुरू किया। उनकी पहली कहानी "ललितादित्य के मार्त्तण्ड" हिन्दी में ही लिखी गई थी। अशोक जेरथ भी हिन्दी के माध्यम से डोगरी में आए। इनकी कहानियाँ मधुमती, हरियाणा सम्वाद, योजना, हिमप्रस्थ, पंजाब केसरी, सौरभ, जागृति, दैनिक ट्रिब्यून, शीराज़ा (हिन्दी) आदि पत्र पत्रिकाओं में छपीं। बाद में अपनी भाषा का मोह उन्हें डोगरी में खींच लाया। डोगरी में सीधे दो एक कहानियां प्रकाशित हुईं। जिनमें "खिनें दी चंगेर" विशेष चर्चित रही। इसका हिन्दी अनुवाद 'नवभारत टाइम्स' में प्रकाशित हुआ। इसी तरह राधाकृष्ण अलंकार ने भी हिन्दी में लिखना शुरू किया पर कालान्तर से डोगरी में भी कहानी रचने लगे। अब तक इनकी पांच-छ: कहानियां डोगरी में प्रकाशित हो चुकी हैं। डोगरी के आधुनिक कथाकारों में डॉ० मनोज, डॉ० ललित मंगोत्रा एवं चमन अरोड़ा की डोगरी में ही कहानी लिखते हैं पर इनकी कई कहानियां हिन्दी में अनूदित हो चुकी हैं। डॉ० मनोज कृत "इक फट्ट केईं पच्छ" हिन्दी रचनाकारों में चर्चित रही है।

पद्मा सचदेव यद्यपि कवियित्री के रूप में ही जानी जाती हैं पर इनका एक कथा चित्र गत वर्ष साप्ताहिक में प्रकाशित हुआ था। डोगरी के उपन्यासकार श्री देशबन्धु डोगरा "नूतन" की कुछेक कहानियां हिन्दी में प्रकाशित हुईं और जनसत्ता तथा दैनिक ट्रिब्यून में इनकी कहानियां चर्चित भी रहीं। ये कहानियां डोगरी में नहीं अपितु हिन्दी में ही रची गईं, यद्यपि साहित्य अकादमी द्वारा उनके उपन्यास "कैदी" को पुरस्कृत करने से पहले ये पूर्णतया डोगरी भाषा और साहित्य को ही समर्पित थे।

इस तरह हम देखते हैं कि डोगरी रचनाकार हिन्दी कथाकार के सामने बैठकर, समान्तर चलने की सामर्थ्य पा रहे हैं। इस सारी प्रक्रिया में सत्तर और अस्सी के दो दशकों ने एक बहुत बड़ा रोल अदा किया है। इन्हीं दिनों वस्तुत: डोगरी कहानी अग्रगति की ओर उन्मुख हुई है और डोगरी कथाकारों का अध्ययन बढ़ा है, अनुभव बढ़े हैं और हिन्दी कथाकारों के साथ सम्पर्क बढ़ जाने से विचारों का आदान-प्रदान हुआ है। आंचलिक, समान्तर और सचेतन कहानी के आंदोलनों में डोगरी कथाकारों ने बढ़-चढ़ कर भाग

लिया है। अतः कथ्य के अनेक नवीन सौपान तय कर शिल्प के नए आयामों को तलाशता डोगरी कथाकार आज इतनी सामर्थ्य रखता है कि भारतीय भाषाओं की समृद्ध रचनाओं के समान्तर अपनी रचनाओं को रख सके। समग्र डोगरी कथा साहित्य यद्यपि इस योग्य नहीं कि उसे हिन्दी कथा साहित्य के समान्तर रखा जा सके परन्तु आधुनिक कथाकारों की रचनाएं इस ओर संकेत करती हैं कि धीरे-धीरे डोगरी कथा साहित्य प्रगतिशील चौखटों में प्रवेश पा रहा है और बाकी समृद्ध भाषाओं में लिखी जा रही कहानियों के समान्तर चल रहा है।

हिन्दी कहानियों की तरह ही डोगरी कहानियों के प्रारम्भ में उपदेशात्मकता, अद्‌भुतरम्यता, शृंगारमयता, लोकात्मकता आदि प्रमुख प्रवृत्तियां रहीं हैं। डोगरी कहानी के पहले संग्रह 'पैहला फुल्ल' की लगभग सभी कहानियों में उपर्युक्त प्रवृत्तियों का कोई न कोई अर्थ हमें मिलता है। "कुड़में दा लाम्मां" कहानी में मंत्र से बादलों में हलचल मचाना—लोक कथाओं पर आधारित है तो "मंगते दा घराट" में बाद में एक उपदेशात्मक आख्यायन देकर इसमें "मॉरल" भरा गया है तो "बूबां दी हीखी" कहानियां, कहानियां नहीं खबरें सी लगती हैं।

"साठे की कहानियों में लोक तत्त्व की प्रधानता इस बात का प्रमाण है कि उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन की बुनियाद अपनी विपुल लोक-सम्पदा पर रखी।"[1]

दूसरा संग्रह "सूई-तागा" में मानो उपदेशात्मकता ठोंसी गई हो—मात्र "हंडोला" कहानी को छोड़कर जो मुंशी प्रेमचंद कृत ईदगाह से प्रभावित लगती है। इसी सिलसिले में बाद में छपने वाला धर्मचन्द्र प्रशान्त द्वारा रचित कहानी संग्रह "उच्चियां धारां" लोक कथाओं पर आधारित है। इसमें पांच कहानियां संग्रहित हैं—"खीरली बल", "नूरजहां दा मुकद्दमा" और "मोह्‌रगढ़ै दी कुंजी" अद्‌भुतरम्यता और तिलस्मी संसार में विचरने वाले पात्रों की कहानियां हैं। जिनमें रमा पाठक आगे क्या हुआ जिज्ञासा लिए पढ़ता रहता है पर कहानी के अन्त में मानो उसके हाथ कुछ नहीं लगता—जासूसी कहानियों की तरह। कहानियों में हर जगह, हर मोड़ पर चमत्कार की सृष्टि हुई है। वस्तुतः ये कहानियां कौतूहल को तृप्त करती घटना प्रधान कहानियां थीं।

शिल्प के आधार पर भी इन कहानियों को अपरिपक्व कहानियों की संज्ञा दी जा सकती है। इन कहानियों में मात्र घटनाओं के मोड़-ब्यौरों के तौर पर प्रस्तुत किए जाते हैं —वे बारीकियां जो आज की कहानी में विद्यमान हैं नहीं थीं। कथानक ढीला-ढीला होता और "एक था राजा" जैसे परम्परागत शिल्प पर ही आधारित कदम दर कदम आगे बढ़ता था। और अक्सर केवल कथानक पर ही रचनाकार अधिकतर आग्रही होता। चरित्र चित्रण अव्वल तो होता नहीं था अगर किसी पात्र को उभारा भी गया हो तो मात्र उसके बाहिरी आवरण रख-रखाव, वाह्य व्यवहार, नैन-नक्श तक ही रचनाकार की दृष्टि जाती थी। उसके अन्तरमन में पैठ पाकर अन्तर्द्वन्द्व के विश्लेषण की ओर कभी रचनाकार की दृष्टि नहीं गई। सम्वाद प्रायः नहीं के बराबर थे। मात्र रचनाकारों के शब्द ही कहानी को बुनते चले जाते थे। जब कभी सम्वाद आए भी हैं तो वे इतने साधारण हैं कि उनके बिना पात्रों को ज्यादा समझा जा सकता है। मात्र एक-सा वर्णन इन कहानियों में मिलता है।

---

१. ओम गोस्वामी डोगरी—कहानी विकास और विश्लेषण—हमारा साहित्य (१९८२) पृ० २

भाषा अक्सर अलंकृत करने के प्रयास में कृत्रिम सी हो जाती है । ये कहानियां मात्र कहानियों के लिए या मन बहलाने के लिए लिखीं गईं—कहानी के पीछे जो रचनाकार का दर्द होता है उसका स्पर्श मात्र भी नहीं हुआ है । वातावरण का अहसास, आसपास की समस्याओं की पहचान और व्यक्ति का व्यक्ति से और प्रकृति तथा समय एवं शून्य से रिश्ते की पहचान कहीं भी दृष्टिगत नहीं होती ।

यद्यपि हिन्दी कहानी में बीसवीं सदी के शुरू से ही अनेक प्रयोग होने लगे थे तथापि शुरू की कहानियों में कहीं-कहीं उपर्युक्त प्रवृत्तियां हमें मिलती हैं ।

बाद में लिखी गई डोगरी कहानियों में यथार्थ का जो पुट मिलता है उसमें नारी जीवन की विसंगतियां, वर्ग विषमता और सामाजिक घेरों में फंसे व्यक्ति की छटपटाहट की अभिव्यक्ति प्रखर रूप से हुई है—यह छठे और सातवें दशक की डोगरी कहानी भी जो अपना उत्स हिन्दी की तीसरे और चौथे दशक की कहानी में से खोज रही थी। नारी वर्ग का वैधव्य, समाज द्वारा तिरस्कृत नारी की विसंगतियों के साथ-साथ आर्थिक रूप से पिछड़ी नारी का शोषण और वेश्यावृत्ति की ओर बाध्य कर दी गई नारी का जो स्वरूप प्रेमचन्द की रचनाओं—वरदान व निर्मला में, जयशंकर प्रसाद कृत "कंकाल" और "तितली" में मिलता है उनका प्रत्यक्ष दिग्दर्शन डोगरी कहानी में भी दृष्टिगत होता है। हिन्दी कथा-साहित्य में "सेवा सदन" से लेकर "प्रेत छाया" तक वेश्याओं के प्रति रचनाकार की सहानुभूति यद्यपि डोगरी अंचल को स्पर्श कर सकी है पर इस जैसी किसी बड़ी समस्या को एक नितान्त समस्या के तौर पर कहानियों में बुना नहीं गया । कहीं-कहीं, पर इसकी चर्चा अवश्य हुई है । शरत् के उपन्यास साहित्य में त्यागमयी वेश्याओं का जो सृजन हुआ है वह हिन्दी में बहुत बाद में मोहन राकेश और कमलेश्वर की रचनाओं में हमें मिलता है, जहां वासना नहीं अपितु स्नेह की अविरल धारा बहती है । इसको चर्चा भी डोगरी कहानियों में कहीं-कहीं पर मिलती है पर उसकी समग्र चेतना में नहीं । चूंकि वेश्यावृति इस अंचल की कोई समस्या नहीं है । सदूर पहाड़ों में तो "सैक्स" टाबू नहीं अक्सर यौन सम्बन्धों को अनेक रूपों में स्वीकार कर लिया जाता है । डॉ० अशोक जेरथ कृत 'आल्हड़ा' कहानी उदाहरण के तौर पर ली जा सकती है ।

वैवाहिक जीवन से सम्बन्धित अनेक समस्याओं को डोगरी कहानी में उभारा गया है । प्रणय और प्रेम की गरिमा, प्रौढ़ कुमारियां, ससुराल में सुनहरे स्वप्नों को संजोए आई नव दुल्हनों का मोहभंग और बिखराव डोगरी कहानियों में खूब हुआ है । एक तरह से यह समस्या राष्ट्रीय स्तर तक एक ही समानता से प्रवाह-मान है अत: हिन्दी, पंजाबी, बंगला, तमिल, गुजराती, मराठी, असमिया, उड़िया, आदि भाषाओं के कथा-साहित्य की तरह डोगरी कथा-साहित्य में भी इसका चित्रण ईमानदारी के साथ हुआ है । परित्यक्ताएं, विवाहितों और अविवाहितों के बीच प्रेम सम्बन्ध भी डोगरी रचनाओं में ईमानदारी के साथ उभरे हैं । डॉ० ललित मंगोत्रा कृत "नाली दे कीड़े" चमन अरोड़ा कृत "सिलसिला" और डॉ० मनोज कृत "इक फट्ट केइं पच्छ" उदाहरण के तौर पर ली जा सकती हैं ।

विवाह संस्थाओं पर प्रश्नचिन्ह लगातीं राजेन्द्र यादव, मोहन राकेश और राजेन्द्र अवस्थी की कहानियों का कोई भी प्रभाव डोगरी साहित्य में नहीं मिलता । विष्णु प्रभाकर द्वारा रचित 'आश्रिता' में इसके संकेत इक्यावन कहानियों के पृ० २७ पर हुए हैं । इस तरह की स्वच्छन्द चेतना को शायद डोगरी रचनाकार ने अभी ग्रहण नहीं किया है । बिना किसी सनद के पति पत्नी अथवा आजीवन मित्र भी रहा जा सकता है, इस ओर किसी

रचनाकार का ध्यान नहीं गया है। हां कहीं छुटपुट रूप में विवाह न करने और यूं ही गाड़ी खींचने की आवाज़ डोगरी कहानियों में उभरी अवश्य है पर उसका उत्स वह नहीं है जो विवाह संस्था को नक्कारने की बात कहते हैं और बिना किसी सामाजिक या कानूनी साक्षी के आजीवन मित्र रहने की बात करते हैं। इनके इलावा स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों को एक नए दृष्टिकोण से देखने का प्रयास जो हिन्दी कहानी में हुआ है—जहां "सैक्स" नहीं अपितु उससे भी ऊपर प्रणय का अद्‌भुत स्वरूप विष्णु प्रभाकर कृत "शरीर से परे" जैसी कहानियों में उभरा है अभी डोगरी कहानी के रचनाकार नहीं पकड़ पाए हैं।

हिन्दी की तरह ही सामाजिक अनाचार, धार्मिक ढोंग, आडम्बरों आदि की अभिव्यक्ति के साथ-साथ इनके प्रति विद्रोह का स्वर डोगरी कहानियों में खूब मिलता है। ग्राम्य जन जीवन, आंचलिकता, समाजवाद के प्रति आस्था, शोषित वर्ग के प्रति सहानुभूति, शोषण के प्रति तिरस्कार आदि का चित्रण— वर्ग विषमता के रूप में डोगरी कहानियों में भी खूब हुआ है। स्वतन्त्रता आन्दोलन और बाद में देश के बंटवारे की दुःखद स्मृतियों को जिस तरह हिन्दी के रचनाकारों—मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादव, महीपसिंह ने अपनी कहानियों में संजोया है वैसा रूप डोगरी कहानियों में नहीं मिलता तथापि वेदराही की रचनाओं में बंटवारे के दर्द को बहुत शिद्दत के साथ महसूस किया जा सकता है। वेदराही, द्वारा रचित और "आले" संग्रह में संग्रहित कहानी "मौत" इस सन्दर्भ में ली जा सकती है। मदन और सलीम के बीच स्नेह की अविरल धारा बहती थी परन्तु बंटवारे के बाद एक मुस्लिम परिवार को काट डालने और उनके मकान को सस्ते दामों खरीदने की बाद मदन के मुंह से कही बात सलीम के कच्ची उम्र के स्नेह पर तुषारपात कर डालती है और उस पर मौत की परछाईं हावी हो जाती है।

स्वतन्त्रता आन्दोलन को लेकर लिखी हुई कुछेक कहानियों में मदन मोहन कृत "खीरला मानू" संग्रह की इसी शीर्षक से लिखी कहानी एक महत्वपूर्ण कहानी के तौर पर ली जा सकती है। कहानी सत्या नामक अल्हड़ नवयौवना के सम्बन्धों से आरम्भ होती है जो प्रत्यवर्तन के माध्यम से अतीत के मधुर क्षणों को स्मरण कर रही है उस अजनबी की प्रतीक्षा में जो गांव-गांव जाकर आज़ादी की ज्योति जला रहा है।

आज़ादी के बाद की मोहभंग की स्थिति को जहां हिन्दी कहानी में उजागर किया है वहां कहीं-कहीं, वैसा ही रूप डोगरी कहानी में मिलता है। मदन मोहन द्वारा रचित 'नमां गीत' में मिलखी योगी अन्य लोगों की तरह आज़ादी के स्वप्न लेता जब उसके करीब पहुंचा तो उसे लगा कि दोनों स्थितियों में कोई अंतर नहीं। आज़ादी के पहले भी पहाड़ रोते थे अब भी पहाड़ रोते हैं—सुखों की वर्षा की आशा बहुत पीछे छूट चुकी है।

पाश्चात्य जगत में उभरे चिन्तन के अनेक रूपों को हिन्दी, उर्दू, बंगला और अंग्रेजी के माध्यम से डोगरी कहानी ने अंगीकार किया है। बाल मनोविज्ञान, किशोर मनोवस्था, समय का अद्‌भुत प्रवाह आदि कथा और शिल्प के नए आयामों को अब डोगरी कहानी हिन्दी कहानी के साथ-साथ ग्रहण कर रही है। पर यह सब उस प्रखरता और तेज़ी से नहीं हो रहा जो हिन्दी कहानी में हो रहा है। आज हिन्दी कहानी हर दशक में करवट बदलती है—नए आन्दोलन जन्म लेते हैं और चुक जाते हैं जो उसके जीवन्त होने का प्रमाण है। कहानी जितनी भी बढ़ी है, आन्दोलन में बढ़ी है—उतने ही नए प्रयोग इसने दिए हैं। नए आयाम तलाशे हैं। नए भावबोध लेकर हर बार नए स्वरूप के साथ यह उभरी है। डोगरी कहानी में कहीं कोई ऐसा आन्दोलन नहीं चला है—डोगरी कहानीकार अपने-अपने द्वीप में बैठे एक दूसरे से कटे कहानी रचते रहे हैं। सबका अपना-अपना संसार है—प्रत्यक्ष तौर पर इन्हें दो हिस्सों में बांटा जा सकता है—एक में वे आते हैं जो परम्परागत तौर पर कहानी के प्रति समर्पित हैं तो दूसरे में नई सोच को लिए हुए अध्ययनरत कहानीकारों का वर्ग है जो प्रयोग-धर्मी है, अतः उनसे डोगरी साहित्य को बहुत सी आशाएं हैं। ☐

अर्थ विज्ञान की दृष्टि से कश्मीरी तथा नेपाली के संस्कृतमूलक शब्दों का विवेचन

☐ डा० केदारनाथ शर्मा

अर्थविज्ञान आधुनिक भाषा विज्ञान की नवीनतम शाखा है। आधुनिक युग में अर्थ की महत्त्वपूर्ण भूमिका को देख कर इसके लिए एक स्वतन्त्र इकाई की आवश्यकता महसूस की गई है।[1] वास्तव में अर्थ ही किसी भाषा का जीवन होता है। ध्वनि और शब्द जहां किसी भाषा रूपी शरीर की संरचना में सहायक होते हैं, वहां अर्थ उसकी आत्मा है। निरुक्तकार आचार्य यास्क अर्थ के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए कहते हैं—"अर्थ ही भाषा रूपी वृक्ष के फूल और फल हैं।"[2] अर्थ के लक्षण पर प्रकाश डालते हुए भर्तृहरि ने वाक्यपदीय में लिखा है—"किसी भी भाषिक इकाई अर्थात् वाक्य, वाक्यांश, पद, शब्द आदि को श्रोत्रेन्द्रिय से ग्रहण करने पर जो मानसिक प्रतीति होती है, वही अर्थ है।"[3] अर्थ के इस लक्षण से यह बात स्पष्ट होती है कि अर्थविज्ञान का सम्बन्ध ध्वनिविज्ञान, रूपविज्ञान आदि की तरह न केवल भाषा विज्ञान से ही है, अपितु यह तर्कशास्त्र और मनोविज्ञान की भी एक प्रमुख शाखा है। शब्द और अर्थ का सम्बन्ध ही मनोवैज्ञानिक है, अतः अर्थविज्ञान का सम्बन्ध मनुष्य के अन्तर्जगत् से जुड़ जाता है।

अर्थविज्ञान के लिए अंग्रेज़ी में 'सेमेण्टिक्स'—(Sementics) शब्द का प्रयोग होता है। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम १९वीं शताब्दी के अन्त में एक फ्रांसिसी विद्वान् माइकेल ब्रेआन ने किया तथा उन्होंने इस शब्द की व्युत्पत्ति 'सेमा' से मानी है।[4] जिसका अर्थ है 'संकेतित करना'। भाषा विज्ञान के क्षेत्र में इसका अर्थ उस शब्द से है, जिससे भावाभिव्यक्ति

---

१. The role of meaning is so fundamental to the language system that its study must constitute one of the main divisions.
—The Principles of Sementics (Stephen Ullmann) P. २४.

२. अर्थं वाचः पुष्पफलमाह।—निरुक्त १.२०.

३. यस्मिंस्तूच्चरिते शब्दे यदा योऽर्थः प्रतीयते।
तमाहुरर्थं तस्यैव नान्यमर्थस्य लक्षणम्॥—वाक्यपदीय !

४. देखिए, हिन्दी सेमेण्टिक्स (डॉ० हरदेव बाहरी) पृ० ८.

का लाक्षणिक संकेत मिलता है। इस दृष्टि से वाग्व्यापार में शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है। शब्द के बिना किसी भी प्रकार की भावाभिव्यक्ति, चाहे वह लिखित रूप में हो अथवा मौखिक हो, सामान्यतया सम्भव नहीं है। शब्द के साथ अर्थ इस प्रकार घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है कि यदि कहा जाये कि बिना अर्थ के शब्द और बिना शब्द के अर्थ नहीं होते तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। क्योंकि भाषा रूपी शरीर का सारा ढांचा शब्दों के आधार पर खड़ा होता है और शब्दों के आधार पर उनके अर्थ होते हैं। प्रसिद्ध विद्वान् बाल्डविन ने अपने दर्शन एवं मनोविज्ञान के कोश में अर्थविज्ञान को ऐतिहासिक शब्दार्थों तथा शब्दों के अर्थों में परिवर्तनों के इतिहास एवं विकास का विवेचन करने वाला विज्ञान माना है।[1]

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रत्येक भाषा में प्रत्येक शब्द का अर्थ होता है, किन्तु यह अर्थ सर्वदा एक नहीं रहता अपितु उसमें परिवर्तन होता रहता है। ऐसा परिवर्तन स्वाभाविक ही है क्योंकि किसी भाषा के विकास में जहां उसकी शब्दावली में ध्वनि एवं रूप-परिवर्तन होते हैं, वहां उस भाषा की शब्दावली में शब्दों के मौलिक अर्थों में भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। प्रस्तुत लेख के अन्तर्गत कश्मीरी तथा नेपाली भाषा के ऐसे ही कुछ संस्कृत मूलक शब्दों को लिया जा रहा है, जिनके मौलिक अर्थों में कुछ न कुछ परिवर्तन घटित हुआ है।

भाषायी सम्बन्ध की दृष्टि से कश्मीरी तथा नेपाली--दोनों भाषाएं एक ही माँ—संस्कृत, की संतान हैं तथा दोनों आधुनिक आर्य-भाषाएं हैं। संस्कृत से कश्मीरी तथा नेपाली तक आने में भाषा को विकास के अनेक पथों से गुजरना पड़ा जिसके फलस्वरूप इन दोनों भाषाओं में संस्कृत से आने वाले शब्दों के न केवल अर्थ परिवर्तन हो गए हैं अपितु भाषा की प्रकृति भी भिन्न हो गई है। फिर भी दोनों भाषाओं में संस्कृत के ऐसे अनेक शब्द उपलब्ध होते हैं जिनके प्राचीन संस्कृत अर्थ अभी भी सुरक्षित हैं, उदाहरणार्थ संस्कृत कोकिल, भोग, माध्यमिक, ध्यान, अंग, वेला तथा व्यवहार से विकसित कश्मीरी तथा नेपाली के क्रमशः कुकिल/कोइली ; बूग्/भोग ; मन्ज़्युम/माध्यमिक ; द्यान/ध्यान ; अंग/आंग ; वेलॖ/विला तथा व्यवहार/व्यवहार जैसे शब्द उक्त दोनों भाषाओं में तत्सम तथा तद्भव दोनों रूपों में प्रचलित हैं एवं च दोनों भाषाओं में ये शब्द संस्कृत के समानार्थक हैं। कश्मीरी तथा नेपाली—दोनों भाषाओं में उक्त शब्दों के क्रमशः अर्थ ये हैं—कोयल, सुख-दुःख का अनुभव; बीच का; तल्लीन अथवा एकाग्रचित्त होना; पीठ (शरीर का भाग); अवसर तथा सम्बन्ध (वर्ताव); चाल-चलन, कारोबार आदि। कुछ विशिष्ट भावों को अभिव्यक्त करने वाले शब्द; उदाहरणार्थ संख्याबोधक शब्द तथा पारिवारिक सम्बन्धों को लक्षित करने वाले शब्द तो प्रत्येक भाषा में मिल जाते हैं जिनके प्राचीन अर्थ सहस्रों वर्षों तक भी परिवर्तित नहीं होते, पर ऐसे शब्दों की संख्या बहुत कम होती है।

समानार्थक संस्कृतमूलक शब्द होने के अतिरिक्त कश्मीरी तथा नेपाली में प्रचलित ऐसे अनेक शब्द हैं जो विभिन्न कालों में विभिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते रहे हैं अर्थात् इन

---

१. "Sementics is the doctrine of historical word meanings, the systematic discussion of the history and development of changes in the meaning of word."

—Baldwin : Dictionary of Philosophy and Psychology.

दोनों भाषाओं में वे उन अर्थों में प्रयुक्त नहीं होते हैं जिन अर्थों में उनका संस्कृत साहित्य में प्रयोग हुआ है अपितु वे भिन्नार्थक हो गए हैं।

निरुक्त में आचार्य यास्क ने अर्थ विकास के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए अर्थ विकास की तीन दिशाओं की ओर संकेत किया है जो इस प्रकार है :—

(i) अर्थ विस्तार (Expansion of Meaning)
(ii) अर्थ संकोच (Contraction of Meaning)
(iii) अर्थादेश (Transference of Meaning)

जहां तक कश्मीरी तथा नेपाली संस्कृतमूलक शब्दों के अर्थ विकास का सम्बन्ध है, इन दोनों भाषाओं में संस्कृत से गृहीत शब्दों का अर्थ-विकास तीनों दिशाओं में हुआ है अर्थात् इन दोनों भाषाओं में संस्कृत के ऐसे अनेक शब्द प्रचलित हैं जो संस्कृत में किसी एक पदार्थ का बोध कराते हैं किन्तु कश्मीरी तथा नेपाली में वे अनेकार्थक हो गए हैं अथवा जो संस्कृत में एक से अधिक पदार्थों के बोधक थे किन्तु कश्मीरी तथा नेपाली में वे किसी एक विशेष पदार्थ के द्योतक बन गए हैं एवं च दोनों भाषाओं में ऐसे संस्कृतमूलक शब्दों की भी कमी नहीं है जो भिन्नार्थक हो गए हैं। कश्मीरी तथा नेपाली के अर्थविकास की तीनों दिशाओं को सोदाहरण दर्शाया जा रहा है।

अर्थविकास की पहली दिशा अर्थ विस्तार की है। अर्थ विस्तार से तात्पर्य है शब्दों के अर्थ का विशिष्ट से हटकर सामान्य हो जाना। अर्थ विकास की इस दिशा के अन्तर्गत ऐसे शब्द आजाते हैं जो संस्कृत में किसी विशिष्ट अर्थ के ही बोधक थे किन्तु कश्मीरी तथा नेपाली में ये शब्द अपनी जाति के अन्य पदार्थों के लिए भी प्रयुक्त होते हैं, यथा यास्क के अनुसार गमनशीलता के कारण सर्वप्रथम पृथ्वी को गो नाम दिया गया। यह अर्थ वहां से विस्तार की दृष्टि में प्रगतिशील हुआ और गमनशीलता के साधर्म्य से गौ, वाणी, आदित्य, इषु तथा रश्मि को भी गो कहा गया।[1]

यह अर्थ विस्तार कई कारणों से होता है। जब कोई शब्द अपने मौलिक अर्थ से मिलते-जुलते किसी अन्य अर्थ को भी लक्षित करने लगता है तो इस प्रकार हुए अर्थ विस्तार को सादृश्य पर आधारित अर्थविस्तार कहा जाता है। आचार्य यास्क ने सादृश्य को अर्थविस्तार का मुख्य कारण माना है और नानार्थक शब्दों के अर्थविस्तार को प्रदर्शित करते हुए सादृश्य को ही मुख्यता दी है।[2] कश्मीरी तथा नेपाली में भी ऐसे संस्कृतमूलक शब्दों की कमी नहीं है जिनके अर्थ सादृश्य के आधार पर विस्तृत हो गए हैं। उदाहरण के लिए कश्मीरी और नेपाली के 'थाल' शब्द को लिया जा सकता है। इन दोनों भाषाओं में प्रचलित यह 'थाल' शब्द संस्कृत के 'स्थाली' शब्द से विकसित है। संस्कृत 'स्थाली' शब्द का अर्थ है मिट्टी की तश्तरी, हँडिया। कश्मीरी तथा नेपाली में इसके विपरीत, 'थाल'

---

१. "गौरिति पृथिव्या नाम-धेयम्। यद् दूरङ्गता भवति।
यच्चास्यां भूतानि गच्छन्ति। गाते र्वौकारो नामकरणः॥
"अथापि पशु नामेह भवत्येतस्मादेव। आदित्येऽपि गौरुच्यते—उताद: परुषे गवि।"
—निरुक्त २/२.

२. वृक्षे-वृक्षे नियतामीमर्यद् गौस्ततो वयः प्रपतान् पुरुषादः। वृक्षे-वृक्षे धनुषि-धनुषि। वृक्षो व्रश्चनात्। वृत्वा क्षांतिष्ठतीतिः वा। क्षा क्षियतेर्निवासकर्मणः। नियतामीमयद् गौः शब्दं करोति। मीमयति शब्दकर्मा। ततो वयः प्रपतन्ति पुरुषानदनाये। विरिति शकुनि—नाम, वेतेर्गतिकर्मणः। अथापीषु नामेह भवत्येतस्मादेव। —निरुक्त २/२.

शब्द 'थाली' अर्थ का द्योतक बन गया है, भले ही वह किसी भी धातु अर्थात् कांसे, पीतल अथवा ताँबे या सोने आदि से ही निर्मित क्यों न हो। उदाहरण द्रष्टव्य है :—

। । ।   ।

कश्मीरी :—बालुकु, सुन्दिरस, चांदि थालुस मन्ज़ ह्योतुन बतु ति मोकॅलुन।

नेपाली :—बालक को **चांदी को थालमा** भात पनि सकिनै लागि सके को छ।

अर्थात् बालक की चांदी की थाली में भात भी समाप्त होने लगा है। इस उदाहरण से यह बात स्पष्ट है कि संस्कृत में जहां 'स्थाली' शब्द मात्र मिट्टी की तश्तरी का ही द्योतक था तो वहीं कश्मीरी तथा नेपाली में 'थाल' शब्द इस विशेष अर्थ-क्षेत्र से हटकर आकृति सादृश्य के आधार पर अन्य पदार्थों से निर्मित तश्तरीनुमा वस्तु का द्योतक बन गया है। अतः स्पष्ट है कि इन दोनों भाषाओं में सादृश्य होने के कारण ही 'थाल' शब्द का अर्थ-विस्तार हो गया है। इसी प्रकार एक अन्य शब्द वोॅवाद (कश्मीरी)/उपाधि (नेपाली) को लिया जा सकता है। दोनों भाषाओं का उक्त शब्द संस्कृत के 'उपाधि' शब्द से निष्पन्न है। संस्कृत में उपाधि का अर्थ है पदवी, धोखा, उपद्रव। कश्मीरी भाषा में 'वोॅवाद' के अर्थ हैं—बीमारी, सुस्ती, आलस्य, द्रारिद्य, बुरी आदत, उपद्रव आदि। नेपाली में 'उपाधि' का अर्थ है 'उपद्रव' होने के साथ-साथ एक नया अर्थ 'आकस्मिक' दुःख भी प्रचलित है, यथा—"यो जीवनमा उपाधि को अन्त छैन," अर्थात् जीवन में आकस्मिक दुःखों का कोई अन्त नहीं है। नेपाली में 'उपाधि' का उक्त नया अर्थ उपद्रव से ही विकसित जान पड़ता है। इसी प्रकार कश्मीरी में 'वोॅवाद' के जिन अर्थों की ओर संकेत किया गया है, उन सभी के मूल में उपद्रव का ही भाव विद्यमान है। अतः यहां भाव सादृश्य के कारण अर्थ विस्तार हुआ है।

इसके अतिरिक्त कई शब्दों के अर्थों का विस्तार साहचर्य के आधार पर भी सम्भव हो सकता है। प्रायः सभी भाषाओं में ऐसे शब्द अधिक संख्या में पाए जाते हैं जिनके भाव स्वतन्त्र रूप से विद्यमान नहीं रहते हैं अपितु वे अन्योन्य-भाव से सम्बद्ध रहते हैं। प्रायः एक शब्द के द्वारा व्यक्त भाव के साथ कई भाव मिले रहते हैं और समय पाकर उनमें से कोई एक मुख्य बन जाता है। आचार्य यास्क ने निरुक्त में साहचर्य के द्वारा अर्थविस्तार का सविस्तार विवेचन किया है। उनके कथनानुसार साहचर्य के कारण एक शब्द का अन्य अर्थ में भी प्रयोग होता है। उदाहरण के लिए सूर्य को उषा के साहचर्य से वत्स नाम से निर्दिष्ट किया गया है।[1] इसी प्रकार, कश्मीरी तथा नेपाली का एक शब्द 'पख' एवं पक्ष है, जो संस्कृत 'पक्ष' शब्द से विकसित है। संस्कृत में 'पक्ष' शब्द का अर्थ है एक पखवाड़ा, पंख, दल, समूह आदि। कश्मीरी में 'पख' शब्द का अर्थ है—पख, तरफ़, ओर। नेपाली में 'पक्ष' का अर्थ है समय पर, ओर, तरफ़। इनमें से कश्मीरी का 'पंख' अर्थ संस्कृत के समान ही है। नेपाली का 'समय पर' अर्थ संस्कृत के पखवाड़े (कृष्णपक्ष-शुक्लपक्ष) से प्रभावित है। कश्मीरी तथा नेपाली का 'तरफ़' तथा 'ओर' अर्थ—दोनों भाषाओं में, संस्कृत के दल अथवा समूह अर्थ से विकसित हो सकता है क्योंकि कोई व्यक्ति किसके पक्ष में है अथवा किसकी तरफ़दारी करता है, इसका अभिप्राय यही है कि वह किस दल अथवा समूह से सम्बद्ध है। इस प्रकार यहाँ साहचर्य के कारण अर्थ विस्तार हुआ है। उदाहरण द्रष्टव्य है :—

---

१. सूर्यमस्या वत्समाह साहचर्याद्, रसहरणाद्वा।—निरुक्त, २·६.

कश्मीरी :—चूर करनवालिसुन्ज़ पख न रटनुचि खबर छि ।

नेपाली :—चोर्‌यो भने त्यसलाई पक्ष न गर्ने थ्‌ाहछ ।

अर्थ :—चोरी करने वाले का पक्ष नहीं लेने का पता है ।

कुछ शब्दों का अर्थविस्तार विविध प्रवृत्तियों के आधार पर होता हैं । वाक्यपदीयकार भर्तृहरि लिखते हैं कि किसी समता के आधार पर अर्थ का तदनुरूप प्रतिपादन होता है,[1] यथा, कश्मीरी के 'चोक' तथा नेपाली के 'चुक' शब्द को लिया जा सकता है। ये 'चोक' तथा 'चुक' शब्द संस्कृत के 'चुक्र:' शब्द से विकसित हैं । संस्कृत में 'चुक्र:' का अर्थ है एक प्रकार की अम्लबेत या अम्ललोणिका ।[2] कश्मीरी में चोक का अर्थ है 'खट्टा पदार्थ' । नेपाली में भी 'चुक' का अर्थ 'खट्टा पदार्थ' है । इस प्रकार, कश्मीरी तथा नेपाली में 'चोक' तथा 'चुक' का प्राय: वही अर्थ है जो संस्कृत में चुक्र: का । किन्तु दोनों में अन्तर यह है कि संस्कृत में चुक्र: एक विशेष अम्लवेत का द्योतक है, जबकि कश्मीरी तथा नेपाली में 'चोक' तथा 'चुक' शब्द सामान्य रूप से सभी खट्टे पदार्थ के द्योतक हैं । उदाहरणार्थ,

कश्मीरी :—चोक अम्ब मु खे, होट गछिय खराब ।

अर्थ :—खट्टा आम न खाओ । गला खराब हो जाएगा । इसी प्रकार नेपाली में :—"सित्तैमा पाये त उ एक पाथी चुक पनि खान्थ्यो" ।

अर्थ :—मुफ्त में मिलने पर वह एक पाथी खट्टा पदार्थ भी खा सकता था ।

इसके अतिरिक्त नेपाली में 'चुक' शब्द भयानक के अर्थ में भी प्रचलित है, जो सम्भवत: खटाई से विकसित हुआ होगा । ज्यादा खट्टा पदार्थ खाने में रुचिकर न होने के फलस्वरूप असहज रूप में ग्रहण किया गया होगा और धीरे-धीरे इससे 'भयानक' जैसा भाव विकसित हुआ होगा—'वाहिर चुक अन्धकार देखिन्छ (नेपाली) अर्थात् बाहर भयानक अन्धकार दीख पड़ता है ।

अर्थविकास की दूसरी दिशा 'अर्थसंकोच' है अर्थात् किसी शब्द के अर्थ की परिधि का संकुचित हो जाना । कश्मीरी तथा नेपाली में ऐसे कितने ही संस्कृतमूलक शब्द विद्यमान हैं जो संस्कृत में किसी एक जाति के समस्त पदार्थों के लिए प्रयुक्त होते हैं जबकि कश्मीरी तथा नेपाली में वे शब्द उस जाति के पदार्थों में से किसी एक के लिए ही रूढ़ हो गये हैं । उदाहरण के लिए संस्कृत 'वेला' शब्द से नि:सृत कश्मीरी वेलु शब्द तथा नेपाली 'वेला' शब्द को लिया जा सकता है । संस्कृत में 'वेला' शब्द के अर्थ हैं—समय, ऋतु, फुरसत, अवसर, विश्राम, का अन्तराल, लहर, प्रवाह, अवकाश, सीमा, भाषण, बीमारी, सहजमृत्यु तथा मसूड़े । कश्मीरी में 'वेलु' शब्द के अर्थ हैं—समय, मौका, उपयुक्त समय, मौसम । जैसे—तस ओस खान्दुरस वेलु वोतु मुत तु चोन गोस बहानु अर्थात् उसकी शादी

१. किञ्चित सामान्यमाश्रित्य स्थिते तु प्रतिपादनम्—वाक्यपदीय ।

२. संस्कृत हिन्दी कोश (वामन शिवराम आप्टे)

का अवसर नज़दीक था और तुम हेतु बन गये। नेपाली में 'वेला' का अर्थ है अवसर या मौका। यथा 'वेलामा' एक मुठी अन्न पनि भएन। अर्थात् मौके पर एक मुट्ठी अनाज भी नहीं मिला। यहां कश्मीरी तथा नेपाली में क्रमशः वेल़ु तथा वेला का अवसर अथवा मौका अर्थ संस्कृत समय अर्थ से विकसित हो सकता है। कश्मीरी की अपेक्षा नेपाली में 'वेला' शब्द के अर्थ की परिधि और अधिक संकुचित हो गई है।

यदि निर्वचन की दृष्टि से देखा जाये तो किसी धातु से व्युत्पन्न शब्द उन सब अर्थों को प्रकट करने वाला होना चाहिए था, जो अर्थ उसके मूल धातु का हो, पर ऐसा होता नहीं है। आचार्य यास्क ने भी इस बात को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि निर्वचन के आधार पर शब्द का सामान्य रूप से प्रयोग नहीं हो सकता है। उनका कहना है कि यदि सभी शब्द धातुज होते तो जो कोई उस काम को करता उन सब को उसी नाम से जाना जाना चाहिए था। अर्थात् इस आधार पर जो कोई भी मार्ग पर दौड़े वह 'अश्व' कहलाना चाहिए था और जो कुछ भी चुभे उसे 'तृण' नाम दिया जाना चाहिए था, जबकि ऐसा है नहीं।[1] इसी प्रकार संस्कृत का 'शास्त्र' शब्द (शास्+ष्ट्रन्) आदेश, नियम, उपदेश, सलाह, शिक्षण, का साधन; विज्ञान तथा धर्मशास्त्र जैसे अर्थों को द्योतित करता है, जबकि कश्मीरी में 'शास्त्र' शब्द केवल उस ग्रन्थ विशेष का बोध कराता है जिसमें धर्मसम्बन्धी नियम एवं उपदेश संग्रहीत हों, जो प्रायः संस्कृत के 'धर्मग्रन्थ' अर्थ के समान ही है, यथा—तस शेतानस छ़ुन शास्त्रस प्यठ ति पछ अर्थात् उस शैतान को अब शास्त्र पर भी विश्वास नहीं है। नेपाली में 'शास्त्र' का अर्थ है 'ज्ञान का ग्रन्थ', 'विज्ञान', और 'यथार्थ ज्ञान' जो सम्भवत; संस्कृत के 'विज्ञान' अर्थ से विकसित है, क्योंकि विज्ञान ज्ञानप्रदायक है। अपि च यह ज्ञान यथार्थ ज्ञान होता है। जैसे—ज्ञान को लागि शास्त्रहरुको अध्ययन आवश्यक छ। अर्थात् ज्ञान के लिए ज्ञान के ग्रन्थों का अध्ययन आवश्यक है। इस पर आचार्य यास्क का कथन है कि ऐसा देखा जाता है कि समान कर्म करने वालों में से कुछ को ही उस नाम की प्राप्ति होती है। यथा 'तक्षा' शब्द का व्युत्पत्तिमूलक अर्थ 'लकड़ी को छीलने वाला' है, परन्तु लकड़ी छीलने वाले प्रत्येक व्यक्ति को 'तक्षा' नाम नहीं दिया जाता अपितु केवल 'बढ़ई' के लिए ही 'तक्षा' शब्द का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार 'परिव्राजक' शब्द का प्रयोग घूमने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए न होकर केवल 'संन्यासी' के लिए ही किया जाता है।[2] इसी प्रकार संस्कृत का पूर्वोक्त 'शास्त्र' शब्द 'शास्' धातु से निष्पन्न है। 'शास्' धातु का अर्थ है—शासन करना (अनन्यशासनामुर्वी शशासैकां पुरिमिव)[3], समादिष्ट करना, आज्ञा देना, उपदेश देना (स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपम्)[4], शिक्षण देना (माणवकं

१. "अथ चेत् सर्वाणि आख्यातजानि नमानि स्युः, यः कश्च तत् कर्म कुर्यात् सर्वं तत् सत्त्वं तथाऽऽचक्षीरन्। यः कश्च-अध्वानमश्नुवीत, अश्वः स वचनीयः स्यात्। यत् किञ्चित् तृन्द्यात्, तृणं तत्। —निरुक्त, १.४।

२. "...पश्यामः समानकर्मणां नामधेयप्रतिलम्भमेकेषाम्, नैकेषाम्। यथा—तक्षः परिव्राजको जीवनो भूमिज इति।—निरुक्त, १.४।

३. रघुवंश, १.३०.

४. कीरातार्जुनीय १.५.

धर्मं शास्ति),[1] दण्ड देना, अध्यापन करना, वशीभूत करना आदि। इनमें से उपदेश देना, अध्यापन करना, शिक्षण प्रदान करना एवं समादिष्ट करना जैसे अर्थों के आधार पर 'शास्त्र' शब्द आदेश, नियम, शिक्षण का साधन, विज्ञान, धर्मशास्त्र तथा धर्मग्रन्थ जैसे अर्थों का द्योतक बन गया है। कश्मीरी में इसके अर्थ की परिधि और अधिक संकुचित हो गई है और इस भाषा में 'शास्त्र' शब्द धर्मशास्त्र अथवा धर्मग्रन्थ का ही बोधक बन गया है। संस्कृत के 'विज्ञान' अर्थ से नेपाली में 'शास्त्र' शब्द ज्ञान का ग्रन्थ, विज्ञान, अथवा यथार्थज्ञान अर्थ का द्योतक बन गया है।

अर्थविस्तार के समान ही साहचर्य और सादृश्य के आधार पर कभी-कभी शब्दों के अर्थ की परिधि संकुचित हो जाती है। उदाहरणार्थ संस्कृत 'अंग' शब्द से विकसित कश्मीरी 'अंग' तथा नेपाली 'आंग' शब्दों को लिया जा सकता है। संस्कृत में अंग शब्द का अर्थ है—शरीर का अवयव (शेषाङ्गनिर्माणविधौ विधातुः)[2], किसी सम्पूर्ण वस्तु का एक भाग अथवा अंश, गौण, सहायक या आश्रित अंग, सहायक साधन, गौण लक्षणों से युक्त समस्त शरीर, छः की संख्या के लिए आलंकारिक कथन आदि। किन्तु कश्मीरी में इस शब्द के अर्थ की परिधि संकुचित होकर केवल शरीर के अवयव जैसे—हाथ, पैर, बाजू, पीठ आदि के लिए ही प्रचलित है। यथा—तस छु गाहे अकिस अंगस दाद आसान तु गाहे बोयिस अर्थात् उसे कभी शरीर के एक अवयव में पीड़ा होती है तो कभी दूसरे अवयव में।

नेपाली में 'आंग' शब्द के अर्थ की परिधि अपेक्षाकृत और भी संकुचित हो गई है। यहां 'आंग' का अर्थ है—शरीर, पीठ। इस प्रकार संस्कृत में जहाँ 'अंग' शब्द कई अर्थों को द्योतित करता है, जैसे किसी भी वस्तु का भाग अथवा अंश, शरीर के अवयव, सहायक साधन आदि, वहीं कश्मीरी में संस्कृत 'भाग' अर्थ के सादृश्य पर 'अंग' शब्द का अर्थ केवल शरीर के अवयवों तक ही सीमित रह गया है और नेपाली में शरीर और शरीर के एक अवयव विशेष 'पीठ' अर्थ के लिए रूढ़ हो गया है। चूंकि पीठ आदि शरीरावयवों के संयोग से ही शरीर की रचना होती है अतः साहचर्य के आधार पर यहां 'आंग' शब्द का अर्थ संकुचित हो गया है। यथा—उ आंगमा बच्चाहरू बोकी खेल्न लागेको छ अर्थात् वह पीठ पर बच्चों को लाद कर खेलने लगा है। इसी प्रकार—उसले आंग सुमसुम्याउदै भन्यो अर्थात् उसने पीठ सहलाते हुए कहा। अपि च—उ पनि ऐना को अगाडि आंग तान्छ अर्थात् वह भी आइने के सामने शरीर तानता है।

अर्थविकास की तीसरी दिशा 'अर्थादेश' की है। अर्थादेश के अन्तर्गत शब्द अपने मौलिक एवं स्वाभाविक अर्थ को छोड़कर अन्य ही अर्थ को प्रकट करते हैं। कभी-कभी शब्द के प्रधान अर्थ के साथ-साथ सादृश्य अथवा साहचर्य के कारण या फिर कभी-कभी अज्ञान वश भी एक अन्य गौण अर्थ भी चलने लगता है और समय के परिवर्तन के साथ-साथ प्रधान अर्थ लुप्त हो जाता है और गौण अर्थ में ही वह शब्द प्रचलित होने लग जाता है। उदाहरण के लिए कश्मीरी 'गाठ' तथा नेपाली 'घाट' शब्द लिये जा सकते हैं। दोनों भाषाओं में ये शब्द संस्कृत के 'घट्ट' शब्द से विकसित हैं। संस्कृत में 'घट्ट' शब्द के

---

१. सिद्धान्तकौमुदी, कारक प्रकरण।

२. कुमारसम्भव, १.३३.

अर्थ हैं—नदी के तट से पानी तक बनी सीढ़ियां, हिलना-जुलना, आन्दोलन, चुंगीघर आदि। कश्मीरी में संस्कृत 'घट्ट' से विकसित 'गाठ' शब्द उस स्थान विशेष के लिए प्रचलित है, जहां से राशन कार्ड पर चावल, आटा, तेल, चीनी, लकड़ी आदि वस्तुएं मिलती हैं, यथा तोमुल गाठ, ज़िनि गाठ, चुनि गाठ आदि। इसके अतिरिक्त कश्मीरी में 'गाठ' शब्द का एक अर्थ है—नदी के तट का वह स्थान जहां से नौका में बैठने के लिए सीढ़ियां बनी हों। यह अर्थ तो संस्कृत के 'घाट' अथवा 'नदी के तट से पानी तक बनी सीढ़ियां' अर्थ के समान ही है। इसके अतिरिक्त कश्मीर में आटा, चावल, लकड़ी आदि वस्तुयें जहां से राशन में मिलती हैं वे स्थान भी प्राय: नदी के किनारे पर ही स्थित हैं और नौका में से ही लोगों को ये चीज़ें दी जाती हैं। सम्भवत: नदी तट के साथ साहचर्य के कारण ही गांठ शब्द का अर्थादेश हुआ है। नेपाली में 'घाट' शब्द के अर्थ हैं—नदी आदि का तट, श्मशान भूमि। इन में 'तट' अर्थ तो संस्कृत के समान ही है। इसी प्रकार 'शमशान' भी प्राय: नदी अथवा तालाब आदि के किनारे पर स्थित होते हैं; अतएव मुर्दा जलाने के काम के संसर्ग के कारण ही नेपाली में 'घाट' शब्द श्मशान का वाचक बना प्रतीत होता है। यथा—सिनु घाट लै जानोस् अर्थात् मुर्दे को श्मशान ले जाइये। इसी प्रकार एक अन्य शब्द है (कश्मीरी) चख/(नेपाली) चख्ख। 'चख' अथवा चख्ख का विकास संस्कृत 'चक्षुष्' से शब्द जान पड़ता है। कश्मीरी में 'चख' का अर्थ है—क्रोध आना या बुरा लगना। यथा—मे मोंग तस कलम तु तस खच् चुख अर्थात् मैंने उससे कलम मांगा तो उसे क्रोध आया (बुरा लगा)। नेपाली में 'चख्ख' शब्द का अर्थ है आश्चर्य, गज़ब। चूंकि आश्चर्य तथा क्रोध आदि के भाव की अभिव्यक्ति आंखों से ही होती है—अत: हो सकता है दोनों भाषाओं में इस शब्द के क्रमश: क्रोध तथा आश्चर्य जैसे अर्थ विकसित हुए हों। यथा यतिका वर्ष पछि उसलाई घर फर्केको देखेर म त चख्ख परें (नेपाली)—अर्थात् इतने वर्षों बाद उसे घर लौट कर मैं तो आश्चर्य में पड़ गया।

अर्थादेश के आगे अर्थोत्कर्ष एवं अर्थापकर्ष के आधार पर भी भेद किये जा सकते हैं। यहां पर इस बात की ओर संकेत कर देना आवश्यक है कि कश्मीरी में ऐसे संस्कृत मूलक शब्द अत्यल्प संख्या में हैं, जिनका कि अर्थादेश हुआ हो। उसमें भी अर्थोत्कर्ष के उदाहरण तो बहुत ही कम मिलते हैं। पर जहाँ तक नेपाली का सम्बन्ध है। उसमें ऐसी बात नहीं है। नेपाली में ऐसे अनेक संस्कृतमूलक शब्द हैं जिनका अर्थादेश हुआ है। साथ-साथ नेपाली में अर्थोत्कर्ष तथा अर्थापकर्ष के उदाहरण भी पर्याप्त संख्या में मिलते हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :—

संस्कृत में दशा शब्द के अर्थ हैं—

वस्त्र के छोर पर रहने वाले धागे, झालर (रक्तांशुकं पवनलोलदशं वहन्ती)[1]; अवस्था, परिस्थिति (नीचै र्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण)[2]; जीवन की एक अवस्था या काल; कर्मों का फल, ग्रहों की दशा आदि। कश्मीरी में 'दशा' का अर्थ है हालत, स्थिति, ग्रहों की स्थिति जो संस्कृत अर्थ के समान ही हैं किन्तु नेपाली में 'दशा' का अर्थ

१. (क) मृच्छकटिक, १.२० ; ५.४.
२. मेघदूत १०९.

बुरे दिन' होने के फलस्वरूप अर्थ अवनत हुआ है। अत एव वहां अर्थापकर्ष स्पष्ट है। यथा—मंगलवार को दशा शान्त होस् अर्थात् भौमग्रह का जो—दुष्प्रभाव है, वह शान्त हो। इसी प्रकार—आजभोलि त्यसलाई दशा लागे को छ अर्थात् आजकल उसके बुरे दिन आये हुए हैं।

अर्थ जब बुरे से ऊपर उठकर अच्छा हो जाता है तो उसे अर्थोत्कर्ष की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। कश्मीरी तथा नेपाली में इसके भी कई उदाहरण उपलब्ध होते हैं। जैसे संस्कृत में 'अट्ट' का अर्थ है 'ऊंची जगह'; छत्त पर की कोठी; महल मीनार आदि (नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे)[1]। कश्मीरी का 'अ़ड' शब्द सं० अट्ट से ही विकसित है। परन्तु कश्मीरी में इस का अर्थ है—'बदमाशों के मिलने या बैठने की जगह।' नेपाली में 'अड्डा' (सं० अट्ट से विकसित) का प्रयोग कश्मीरी की तरह 'बदमाशों के बैठने की जगह' जैसे बुरे अर्थ में न होकर अदालत, दफ्तर तथा अखाड़ा जैसे अच्छे अर्थों में होता है। तात्पर्य यह है कि अदालत तथा दफ्तर आदि में भी लोग इकट्ठे बैठते हैं परन्तु वे लोग पढ़े-लिखे और सभ्य होते हैं और राजकीय कार्यों में संलग्न होते हैं। जबकि 'अड्डे' के लोग अनपढ़, गंवार, क्रोधी तथा बेकार होते हैं। जैसे—अड्डा मा आज मेरो तारीख छ (नेपाली) अर्थात् आज अदालत में मेरी तारीख है। स्पष्ट है कि ऊपर के उदाहरणों में कश्मीरी अर्थापकर्ष हुआ है और नेपाली में अर्थोत्कर्ष।

निष्कर्ष यह कि नेपाली तथा कश्मीरी में ऐसे असंख्य संस्कृतमूलक शब्द विद्यमान हैं, जिनका अर्थवैज्ञानिक दृष्टि से विवेचन किया जा सकता है। अर्थविज्ञान के अतिरिक्त ध्वनि विज्ञान, रूप विज्ञान तथा वाक्यविज्ञान की दृष्टि से भी दोनों भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। □

१. रघुवंश ६.६७।

कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण

□ डा० ओंकार कौल

कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं का सविस्तार व्यतिरेकी विश्लेषण अभी तक उपलब्ध नहीं है। कश्मीरी भाषा भाषियों को हिन्दी पढ़ाने और हिन्दी भाषा-भाषियों को कश्मीरी भाषा पढ़ाने के लिए दोनों भाषाओं का व्यतिरेकी विश्लेषण करना अत्यावश्यक है। इसी दृष्टि से दोनों भाषाओं के कुछ भाषागत पक्षों का व्यतिरेकी विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। यह व्यतिरेकी विश्लेषण मुख्यतय: ध्वन्यात्मक लिंग-भेद तथा अर्थपरक स्तरों तक सीमित है।

ध्वन्यात्मक स्तर

किन्हीं दो भाषाओं के ध्वन्यात्मक स्तर पर व्यतिरेकी विश्लेषण में दो भाषाओं में विशिष्ट ध्वनियों की समानता या असमानता को बताना काफी नहीं है। भाषा विशेष में प्रयुक्त इन ध्वनियों के प्रायोजनात्मक आधार तथा उनके पारस्परिक समता और वैषमता को समझना भी आवश्यक है। इसीलिए किन्हीं दो भाषाओं का ध्वन्यात्मक स्तर पर व्यतिरेकी विश्लेषण प्रस्तुत करना जितना सरल कार्य दिखता है वास्तव में वह उतना ही जटिल है। जब इसे सूक्ष्मता से देखा जाए – दो भाषाओं की ध्वनियों के बाह्य साम्य तथा वैषम्य की तालिका कुछ हद तक एक भाषा-शिक्षक तथा भाषा के शिक्षार्थी के लिए उपयोगी हो सकती है, मगर वैज्ञानिक अध्ययन कर्त्ता के लिए नहीं। एक भाषा-वैज्ञानिक किसी भी भाषा की ध्वनियों के विभिन्न शाब्दिक सन्दर्भों में प्रयोग, उनके प्रतिबन्धों को दृष्टि में रखकर उनके पारस्परिक साम्य और वैषम्य में रुचि रखता है। यहाँ दोनों भाषाओं के ध्वन्यात्मक संरचना से सम्बन्धित कुछ मुख्य बातों की चर्चा की जा सकती है जो भाषा अध्ययन या अध्यापन के लिए आवश्यक है। प्राय: दोनों भाषाओं की विशिष्ट ध्वनियों के बाह्य साम्य रूपों का उच्चारण एक अन्य भाषा-शिक्षार्थी के लिए सरल हैं। अन्य भाषा में प्रयुक्त भिन्न ध्वनियाँ अवश्य कठिनाई पेश करती हैं। ऐसी ध्वनियों का सही उच्चारण तथा उनका सही प्रयोग जानना आवश्यक है। यहां दोनों भाषाओं कश्मीरी और हिन्दी में प्रयुक्त विभिन्न स्वर तथा व्यंजन ध्वनियों की तालिका प्रस्तुत की जा सकती है।

कश्मीरी के स्वर-स्वनिम

	अग्र	मध्य	पश्च
उच्च:	इ ई	अॅ ऑ	(उॅ ऊॅ) उ ऊ
मध्य:	ऍ ए	अ आ	(ओ'' औ'') ओ आ
निम्न:		अ आ	अ''

हिन्दी के स्वर-स्वनिम

	अग्र	मध्य	पश्च
उच्च	इ ई		उ ऊ
मध्य	ए		ओ
निम्न	ऐ	अ आ	औ

स्वरों की अनुनासिकता दोनों भाषाओं में महत्वपूर्ण है। क्योंकि इसके कारण अर्थ में परिवर्तन हो जाता है। दोनों भाषाओं की सभी स्वर-स्वनिम मौखिक भी हैं और अनुनासिक भी।

जैसा कि ऊपर तालिका में दिखाया गया है कि कश्मीरी में मध्यवर्ती उच्च तथा मध्य स्वर (अॅ, ऑ, अ, आ,) चार पश्च अगोलकार स्वर (उॅ, ऊॅ, ओ, औ) दो मध्य अग्र तथा मध्य पश्च स्वर (ऍ, ओ,) और निम्न पश्च स्वर (अग्र) हैं जो हिन्दी में नहीं मिलते। इसी तरह हिन्दी में निम्न अग्र स्वर (ऐ) और निम्न पश्च स्वर (औ) हैं जो कश्मीरी में नहीं हैं।

चूंकि कश्मीरी में (ऐ) तथा (ओ) नहीं है, इसलिए कश्मीरी भाषा भाषी प्राय: हिन्दी के शब्दों का गलत उच्चारण करता है। उदाहरणतय:

हिन्दी	कश्मीरी-हिन्दी
ऐनक	एनक
औरत	अवरत/अवरथ
सौ	सव
कौन	कौ''न
मौन	मौ''न

कश्मीरी सीखने वाला हिन्दी भाषा भाषी कश्मीरी के स्वरों (अॅ, ऑ, अ' तथा आ') के लिए क्रमश: (उ, ऊ, अ तथा आ) का प्रयोग करता है :

कश्मीरी	हिन्दी-कश्मीरी	अर्थ
बतॅ	बतु	'खाना'
तॉर	तूर	'ठण्ड'
अ'छ	अछ	'आंख'
आ'स	आस	'मुंह'

हिन्दी भाषा भाषी गोलाकार तथा अगोलाकार पश्च स्वरों में अन्तर निम्नलिखित शाब्दिक युग्में में नहीं कर पाता है :

शुर	'बच्चा'	शूंर	'बच्ची'
बुड	'बूढ़ा	बुड	'बूढी'
गूर	दूधवाली	गूंर	'दूधवाली'
छो'ट	नाटा	छोट	'नाटी'
गो'ट	धुन्धला	गौ''ट~गट	'धुन्धली'
चोक	खच्टा	चो''क~चो''च	'खट्टी'

हिन्दी भाषा भाषी ऊपर दिये गये शब्दों में पश्च गोलाकार स्वरों का उच्चारण करते हैं। कश्मीरी में (ओ) केवल शब्दों के अन्त में प्रयोग होता है, शब्दों के आरम्भ तथा मध्य में (औ) का प्रयोग होता है। हिन्दी भाषा-भाषी सभी स्थानों पर (ओ) का प्रयोग करते हैं या उसे (औ) में परिवर्तित करते हैं। उदाहरण

कश्मीरी	**हिन्दी-कश्मीरी**
औ"ल	ओल 'घोंसला'
चौ"र	चोर 'चार'
मौ"र	मोर 'मौर'

हिन्दी भाषा भाषी कश्मीरी के ह्रस्व स्वरों (एं) और (ओं) को दीर्घ स्वरों में परिवर्तित करता है। उदाहरण:

कश्मीरी	**हिन्दी-कश्मीरी**
त्रे'	त्रे 'तीन'
हो'ल	होल 'टेडा'

कश्मीरी के अग्र स्वर (इ, ई, एॅ ए,) तथा (अ", उ, अ" तथा ओ) स्वर शब्दों के आरम्भ में प्रयुक्त नहीं होते। (केवल कुछ शिक्षित भाषा भाषी अग्र स्वरों का प्रयोग कुछ शब्दों के आरम्भ में करते हैं।) (ओ' तथा औ") का प्रयोग केवल शब्दों के आरम्भ में या मध्य में ही होता है। (आँ) तथा ऊ शब्दों के अन्त में प्रयुक्त नहीं होते। कश्मीरी भाषा भाषी कश्मीरी के प्रभाव में कुछ हिन्दी शब्दों का उच्चारण अलग तरह से करता है। उदाहरण:

हिन्दी	**कश्मीरी-हिन्दी**
इन्कार	यिन्कार
उन्त	वून
गुरू	गुरु

कश्मीरी और हिन्दी के व्यंजन-स्वनिम

(चिन्ह + का मतलब है उपलब्ध तथा — का मतलब है अनुपलब्ध)

१. स्पर्श

	प्	फ्	ब्	भ्	त्	थ	द्	ध्	ट्	ठ्	ड्	ढ्	क्	ख्	ग्	घ्
हिन्दी	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+	+
कश्मीरी	+	+	+	—	+	+	+	—	+	+	+	—	+	—	—	—

२. स्पर्श संघर्षी

	च्	छ्	ज्	झ्	च़्	छ़्
हिन्दी	+	+	+	+	—	—
कश्मीरी	+	+	+	—	+	+

३. संघर्षी

	फ़्	स्	ज़्	श्	ह्
हिन्दी	+	+	—	+	+
कश्मीरी	+	+	+	+	+

४. अनुनासिक

	म्	न्	ङ्
हिन्दी	+	+	+
कश्मीरी	+	+	+

५. पार्श्विक

	ल्
हिन्दी	+
कश्मीरी	+

६. लुंठित

	र
हिन्दी	+
कश्मीरी	+

७. उत्क्षिप्त

	ड़्	ढ़्
हिन्दी	+	+
कश्मीरी	+	—

८. सप्रवाह अर्द्धस्वर

	य्	व्
हिन्दी	+	+
कश्मीरी	+	+

जैसा कि ऊपर देखा जा सकता है, कश्मीरी में हिन्दी के सघोष महाप्राण स्वनिम् (भ्) (ध्) (घ्) (ढ्) (झ) नहीं हैं। इसी तरह कश्मीरी की (च़्) (छ़्) और (ज़्) व्यंजन ध्वनियां हिन्दी में नहीं हैं।

एक कश्मीरी भाषा भाषी साधारणतय: सघोष महाप्राण स्वनिम (भ्) (ध्) (झ्) (घ्) तथा (ढ्) के लिए क्रमश: (ब्) (द्) (ज्) (ग्) तथा (ड्) का उच्चारण निम्नलिखित उदाहरणों में करता है:

हिन्दी	कश्मीरी-हिन्दी
भाभी	बाबी
धन	दन
ढोल	डोल
झण्डा	जण्डा
घर	गर
पढ़ना	पड़ना

कश्मीरी भाषा भाषियों को हिन्दी की सघोष महाप्राण व्यंजन स्वनिम के सही उच्चारण को सीखने के लिए विशेष प्रयास करना आवश्यक है। इसी तरह कश्मीरी दन्त्य स्पर्श संघर्षी व्यंजन (च़) और (छ़) तथा संघोष संघर्षी (ज़) हिन्दी में न होने के कारण हिन्दी भाषा भाषी इन्हें क्रमश: (च) (छ) और (ज) की तरह ही उच्चरित करता है।

कश्मीरी	हिन्दी-कश्मीरी	
च़ामन	चामन	'पनीर'
चूर	चूर	'चोर'
छ़ल	छल	'छल'
छ़ाय	छाय	'छाया'
ज़ून	जून	'चाँद'
ज़ाम	जाम	'ननद'

कश्मीरी भाषा में केवल शब्द के आरम्भ में वही व्यंजन गुच्छ आ सकते हैं जिनका दूसरा व्यंजन (र) होता है तथा शब्द के अन्त में वही व्यंजन-गुच्छ आते हैं जिनका पहला व्यंजन अनुनासिक व्यंजन होता है। हिन्दी-उर्दू तथा दूसरी भाषाओं से कश्मीरी में आये हुए शब्दों में अन्य किस्म के व्यंजन गुच्छ स्थिर (कायम) नहीं रहते। इसीलिए कश्मीरी भाषा भाषी उन हिन्दी शब्दों का उच्चारण ठीक तरह से नहीं करता जिनमें अलग किस्म के व्यंजन गुच्छ आते हैं:

हिन्दी	कश्मीरी
शर्म	शरॅम
रस्म	रसॅम
कृष्ण	कृशॅन

कश्मीरी में शब्दों में दोहरे व्यंजन (Geminates) एक साथ नहीं आते। इस तरह हिन्दी के ऐसे शब्दों का उच्चारण कश्मीरी भाषा भाषी सामान्यता अलग तरह से करता है:

हिन्दी	कश्मीरी-हिन्दी
बच्चा	बचा
सच्चा	सचा
पक्का	पका
कुत्ता	कुता
लज्जा	लजा

कश्मीरी में दूसरी भाषाओं से आये अघोष अल्पप्राण स्पर्श व्यंजन (त्) (ट्) तथा (क्) शब्दों के अन्त में क्रमश: अघोष महाप्राण व्यंजन उच्चरित होते हैं। कश्मीरी भाषा भाषी ऐसे शब्दों का हिन्दी में उच्चारण सही नहीं करता है :

हिन्दी	कश्मीरी-हिन्दी
रात	राथ
सात	साथ
जाट	जाठ
सूट	सूठ
पाप	पाफ
सांप	सांफ
पाक	पाख
अदरक	अदरख

कश्मीरी व्यंजन की तमाम अतालवीय स्वनिमों के साथ तालव्यता (Palatalization) जोड़ी जा सकती है। हिन्दी में यह सम्भव नहीं है। व्यंजनों के साथ लगी तालव्यता का उच्चारण हिन्दी भाषा भाषी के लिए सहज नहीं है। सामान्यत: हिन्दी भाषा भाषी से कश्मीरी के शब्द में उच्चारण सम्बन्धी निम्न प्रकार की त्रुटियां हो जाती हैं :

कश्मीरी	हिन्दी-कश्मीरी
बून्य	बूनि 'चिनार'
नट्रंय	नटि 'मटके'
थद्रय	थदि 'ऊंचे'
अस्य	असि 'हम'

ध्वनि वैज्ञानिक स्तर पर दोनों कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं का सविस्तार व्यतिरेकी विश्लेषण कश्मीरी भाषा भाषियों को हिन्दी का उच्चारण और हिन्दी भाषा भाषियों को कश्मीरी का उच्चारण सीखाने में और तत्सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में सहयोग दे सकता है।

२. लिंग-भेद

लिंग भेद की दृष्टि से दोनों कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं की संज्ञाओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। पुलिंग तथा स्त्रीलिंग संज्ञाओं के सही लिंग का ज्ञान उनके वाक्यों में सही प्रयोग के लिए आवश्यक है। इन दो भाषाओं में समान स्रोत से लिये गये बहुत से शब्दों का लिंग भिन्न है। समरूपी तथा समानार्थी शब्दों के लिंग की भिन्नता के कारण लिंग से सम्बंधित त्रुटियों का होना स्वाभाविक ही है। कश्मीरी भाषा भाषी अपनी मातृ भाषा के प्रभाव से हिन्दी की कई संज्ञाओं का वाक्यों में सही प्रयोग नहीं कर पाता ।

बहुत सारी संज्ञायें हिन्दी में स्त्रीलिंग के रूप में प्रयुक्त होती हैं और उनके पर्याय कश्मीरी में पुलिंग हैं। ऐसे शब्द प्राय: एक ही स्रोत से दोनों भाषाओं में आये हैं और उच्चारण दोनों भाषाओं में भिन्न है। ऐसे कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

हिन्दी (स्त्रीलिंग)	कश्मीरी (पुंलिग)	हि० (स्त्री०)	कश्मीरी (पुं०)
औलाद	अवलाद	आरज़ू	आरज़ू
आदत	आदथ	आत्मा	आत्मा
इजाज़त	यिजालथ	अंग्रीज़ी	अंग्रीज़ी
उर्दू	उर्दू	कमर	कमर
कीमत	कॉमथ	कसम	कसम
कंटीन	कंटीन	क्लास	कलास
कौम	कौ"म	किस्मत	कॅसमथ
किस्म	कॅसंम	कुरान	क्वरान
खता	खताह	खुराक	ख्वराख
गास	गासॅ	गज़ल	गज़ॅल
गिज़ा	गज़ा	चीज़	चीज़
चोट	चौट	जायदाद	जायिदाद
झील	जील	जेल	जेल
जुरत	जुरथ	जनत	जनथ
जान	जान	ज़मीर	ज़मीर
ज़रूरत	ज़रूरथ	ज़ीन	ज़ीन
टीम	टीम	ताकीद	ताकीद
ताकत	ताकथ	तफसील	तफसील
तमन्ना	तमनाह	तकदीर	तकदीर
तारीक	ता'रीख	तसवीर	तसवीर
तबियत	तबियथ	तसल्ली	तसलेंह
तैतील	तॉतील	डाक	डाख
दसतार	दसतार	दवा	दवाह
दुनिया	दुनियाह	दुवा	दुवाह
दुकान	दुकान	पतंग	पतंग
पैंसल	पॅन्सल	पोशाक	प्वशाख
पतलून	पतलून	पूड़ी	पूर्‌य
फोटू	फौ"टू	फारसी	फारसी
फौज	फौ"ज	बुलबुल	बुल्बुल
बहार	बहार	मदद	मदथ
मरज़	मरॅज़	मुराद	मुराद
मेज़	मेज़	मौत	मौ"थ
मोटर	मौ"टर	मोम	मौ"म
मुबारक	मुबारख	मुश्किल	मुश्किल
याद	याद	रबड़	रबड़

हिन्दी (स्त्रीलिंग)	कश्मीरी (पुंलिग)	हि० (स्त्री०)	कश्मीरी (पु०)
शाम	शाम	शाल	शाल
शबनम	शबनम	शराब	शराब
सिग्रेट	सिग्रेठ	शर्त	शरथ
सुबह	सुबह	साइकिल	सयकल
सैर	सा'र	हड़ताल	हरताल
हवा	हवाह		

इसी तरह एक ही स्रोत से लिए गये समानार्थी कई संज्ञाएं हिन्दी में पुंलिग के रूप में प्रयुक्त होती हैं और कश्मीरी में स्त्रीलिंग के रूप में। उदाहरण :

हिन्दी (पुंलिग)	कश्मीरी (स्त्रीलिंग)	हिन्दी (पुंलिग)	कश्मीरी (स्त्रीलिंग)
आम	अम्ब	काम	काम
ज़िकिर	ज़िकिर	चक	चक
तार	तार	थप्पड़	थापॅर
पार्क	पारॅक	पराठा	पराठॅ
रुपया	र्‌वपय	रूमाल	रूमाल
लिहाफ	लेफ	शर्बत	शरबथ
साबुन	साबन		

ऐसे ही कई समानार्थी संज्ञाएं जिनके मूल स्रोत दो भाषाओं में भिन्न-भिन्न हैं, हिन्दी में स्त्रीलिंग के रूप में प्रयुक्त होते हैं तथा कश्मीरी में पुंलिग के रूप में। उदाहरण :

हिन्दी (स्त्रीलिंग)	कश्मीरी (पुंलिग)	हिन्दी (स्त्री०)	कश्मीरी (पुं०)
आग	नार	कलाई	होच़
चीनी	मदरेर	तितली	पन्‌पोंपुर
जेब	चन्दॅ	रोशनी	गाश
बारिश	रुद	सुगन्ध	मुशुक
बर्फ	शीन	कीमा	मछ़

कई ऐसी संज्ञाएं भी हैं जो हिन्दी में पुंलिग हैं तथा कश्मीरी में स्त्रीलिंग। उदाहरण :

चांद	ज़ून	पत्थर	कन्य
पेट	यड़	मकान	लर
रूमाल	दज	पनीर	चा़मन
स्थान	जाय		

सप्ताह के दिनों के नाम चाहे एक ही मूल स्रोत से हों, चाहे अलग-अलग स्रोतों से हिन्दी में पुंलिग हैं तथा कश्मीरी में स्त्रीलिंग :

सोमवार	चॅन्दॅरबार	मंगलवार	बोमवार
बुद्धवार	ब्वदवार	वीरवार	ब्रसवार
शुक्रवार	शोकॅरवार	शनिवार	बटॅवार
रविवार	आथॅवार		

"जुम्मा" हिन्दी और कश्मीरी दोनों भाषाओं में पुंलिग के रूप में प्रयुक्त होता है। कश्मीरी में इसका उच्चारण "जुमाह" है।

कश्मीरी भाषा भाषियों को दोनों भाषाओं के समरूपी और समानार्थी शब्दों के सही लिंग को याद रखने का विशेष प्रयास करना आवश्यक है। कश्मीरी भाषा भाषी हिन्दी में लिंग भेद से सम्बन्धित कई व्याकरणिक त्रुटियां करता है। निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत हैं :

(* चिन्ह * अव्याकरणिक वाक्य के लिए है)

* यह रूमाल अच्छी है।

* उसने चांद देखी।

* उस दिन सोमवार थी।

* इसका कीमत अच्छा है। आदि

३. अर्थ वैज्ञानिक स्तर

अर्थ वैज्ञानिक स्तर पर दोनों भाषाओं में अन्य भाषा-शिक्षण की दृष्टि से तथ्यों को जानना आवश्यक है जिनकी वजह से अर्थ समझने या समझाने में कठिनाईयां पेश आती हैं। इस समस्या के दो पक्ष हैं : (अ) शब्दों के बाह्य रूप की समता तथा अर्थ-वैभिन्य और (आ) भाषा$_1$ के शब्दों, संयुक्त शब्दों या वाक्यांशों को भाषा$_2$ में थोंपना। (यानी भाषा$_1$ की संरचना के प्रभाव में भाषा$_2$ में भाषा$_1$ के वाक्यांशों के शाब्दिक अनुवाद का प्रयोग)।

कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं में कई ऐसे शब्द हैं जो बाह्य रूप से एक जैसे दीखते हैं, मगर दो भाषाओं में इन के अर्थ अलग-अलग हैं। उदाहरण :

हिन्दी	**अर्थ**	**कश्मीरी**	**अर्थ**
अति	अधिक	अति	वहाँ
अज़	से	अज़	आज
आस	आशा	आस	मैं आया
अम्बर	आकाश	अम्बर	ढेर
आय	आमदानी	आय	लम्बी उम्र
कल	बीता हुआ या आने वाला दिन	कल	इतिज़ांर
गाल	cheek	गाल	शर्म
गुर	तरीका	गुर	घोड़ा
चार	four	चार	ज़ोर
जानवर	animal	जानवर	पक्षी
तर	गीला	तर	पार करो
ताब	गर्मी	ताब	धैर्य
नस	रग	नस	नाक
न्याय	justice	न्याय	लड़ाई
पनाह	shelter	पनाह	चौड़ाई
मास	महीना	मास	मौसी
रब	परमात्मा	रब	कीचड़
लब	होंठ	लब	दीवार
साल	वर्ष	साल	साली

अलग से इन शब्दों के सुनने पर इनका अर्थ समझने में कठिनाई आ सकती है। वाक्यों या सन्दर्भ विशेष में इनके प्रयोग से अर्थ समझने में आसानी होती है।

ऐसा देखा गया है कि भाषा के विद्यार्थी, भाषा के शब्दों, वाक्यांशों के शब्दश: अनुवाद भाषा2 में थोंपते हैं। भाषा2 में ऐसे शब्दों तथा वाक्यांशों का प्रयोग सही नहीं होता। कश्मीरी के कई वाक्यांशों का शब्दश: हिन्दी अनुवाद सही नहीं है। इस किस्म की त्रुटियाँ आम नज़र आती हैं। उदाहरण प्रस्तुत हैं :

कश्मीरी	हिन्दी
नेंदर करॅन्य	नींद करना
नेंदर खसॅन्य	नींद चढ़ना
वथ यिन्य	रास्ता आना
फोटू तुलुन	फोटू उठाना
बिस्तर जावुन	बिस्तर छोड़ना
बुथि लगुन	सामने लगना
वापस फेकन	वापिस फिरना
टुप्य दिन्य	टोपी देना
दरवाज़ॅ द्रयुन	दरवाज़ा देना
दार दिन्य	खिड़की देना
कन द्रयुन	कान देना
कूद खसुन	क्रोध चढ़ना
शरारथ खसॅन्य	शरारत चढ़ना
बूठ लागुन	जूता लगाना

(बूठ लागुन कश्मीरी में 'जूता पहनने' के अर्थ में प्रयुक्त होता है न कि जुता लगाने के अर्थ में)

प्राय: देखने में आया है कि कश्मीरी भाषा भाषी हिन्दी का शिक्षार्थी कश्मीरी के प्रभाव में इस प्रकार की त्रुटियों का शिकार हो जाता है।

* मैंने नींद की।
* मुझे रास्ता नहीं आया।
* उसने फोटू उठाया।
* मुझे शरारत चढ़ी।
* उसने कान दिया। आदि।

इसी तरह कई कश्मीरी भाषा भाषी कश्मीरी वाक्यों का शब्दश: हिन्दी में अनुवाद प्रयुक्त करते हैं। निम्नलिखित हिन्दी के अव्याकरणिक वाक्य वास्तव में कश्मीरी के सही वाक्यों के शब्दश: अनुवाद हैं :

हिन्दी	कश्मीरी
* खाना मत खाना है।	बतॅ मा छुम ख्योंन ?
* बिस्तरा और मत चाहिए ?	बिसतरॅ मा गछी बेयि ?
* और मत चाहिए कुछ ?	बेयि मा गछिय केंह ?

सामान्यत: अशिक्षित या अल्पशिक्षित कश्मीरी भाषा भाषी हिन्दी-उर्दू बोलते

समय इस किस्म की त्रुटियां करता है। जिन कश्मीरीयों ने हिन्दी-उर्दू में अच्छी या उच्च शिक्षा प्राप्त की हो ऐसी त्रुटियों से बचने का उनका विशेष प्रयास रहता है। कश्मीरी मातृ भाषी कई लेखक हिन्दी-उर्दू में मौलिक रचनाएं भी लिखते हैं। उनकी लिखित हिन्दी-उर्दू रचनाओं में भी कई त्रुटियां देखने को मिलती हैं। ऐसी त्रुटियों का एकमात्र कारण मातृ भाषा कश्मीरी की संरचना का प्रभाव है। एक अन्य लेखों (कौल १९७९-८०) में ऐसे कई उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। कुछ उदाहरण यहां दोहराये जा रहे हैं।

कुलदीप रैना ने 'अधूरे ख्वाब' नामक अपने उर्दू के उपन्यास (श्रीनगर १९६५) में निम्नलिखित अशुद्ध वाक्यों का प्रयोग किया है :

- उसके आंखों के सामने अन्धेरा छाने लगा वह बेहोस जैसा हुआ (पृ० १४)
- फौटू भी उंगलियों में ढील होकर घास पर पड़ गया। (पृ० १६)
- पंखे ने हवा उड़ाना शुरु किया। (पृ० २०)
- कमल के आंखों के सामने अन्धेरा छा गया। (पृ० ३१)
- मोटर साइकिल सिटार्ट किया (पृ० ३५)
- कमल ने मेरे इज्ज़त की चोरी की। (पृ० ३६)
- उसके समझ में कुछ आने लगा (पृ० ४१)
- थोड़े ही देर में (पृ० ५२)
- चन्द ही देर बाद (पृ० ५८)
- दोनों ने सिगरेट जलायें (पृ० ११५)
- सिगरेट जलाया (पृ० १३९)
- कल वहाँ का सैर करना है (पृ० १५३)

अर्जुननाथ रैना ने अपनी हिन्दी पुस्तक "केसर के फूल" (दिल्ली १९७३) में निम्नलिखित अशुद्ध वाक्यों का प्रयोग किया है :

- खुदाया कमाल (पृ० १)
- शाबान का उसे बहुत पास था (पृ० ४)
- बादाम फूल की सुगन्ध दूर दूर तक फैल गई (पृ० ५)
- मेरे अल्लाह……तुम हो और तुम ही रहेगा (पृ० ६)
- सब वापिस फिरे (पृ० १५)
- मैंने नमस्त किया (पृ० २१)
- जब कभी कश्मीर वाहिका में हिमपात पड़ता हो। (पृ० ४३)
- मां की तस्सली और आराम कर (पृ० ७७)
- मिट्टी के टीले दोनों ओर उठ पड़े (पृ० ८७)
- प्रभात हो रहा था।

ऊपर दिये गये उदाहरणों से स्पष्ट हो जाता है कि कश्मीरी भाषा भाषी हिन्दी बोलते या लिखते समय अपनी मातृ भाषा कश्मीरी की संरचना के प्रभाव में रहकर त्रुटियां कर बैठता है। इसी तरह हिन्दी भाषा भाषियों द्वारा कश्मीरी में बोलने या लिखने में कई तरह की त्रुटियां देखी जा सकती हैं। ऐसी त्रुटियों का विश्लेषण करने से मातृभाषा या भाषा का भाव ही प्रमुख कारण सामने आता है।

जैसा कि लेख के आरम्भ में बताया गया है कि कश्मीरी और हिन्दी भाषाओं का व्यतिरेकी अध्ययन सविस्तार होने की आवश्यकता है। इस व्यतिरेकी अध्ययन के निष्कर्ष

को ध्यान में रखकर कश्मीरी भाषा भाषियों को हिन्दी पढ़ने के लिए विशेष पठन सामग्री तैयार करने की आवश्यकता है। इसी तरह हिन्दी भाषा भाषियों के कश्मीरी पढ़ाने के लिए भी विशेष भाषा-सामग्री तैयार की जा सकती है।

भारतीय भाषाओं के पारस्परिक व्यतिरेकी अध्ययन भाषाविदों तथा भारतीय भाषाओं के भाषा-शिक्षों के लिए भी बहुत ही उपयोगी सिद्ध होगा।

□

लेखकों से आग्रह

- □ प्रकाशित रचनाओं पर नियमानुसार उपयुक्त पारिश्रमिक देने की व्यवस्था है।
- □ जम्मू-कश्मीर में कला, संस्कृति और साहित्य के आकलन और उसके विकास को रेखांकित करने वाली सामग्री को **शीराज़ा** में वरीयता दी जाती है।
- □ रचनाएं कागज़ के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखकर अथवा टाइप करवाकर भेजें। कॉबर्न-कॉपी पर विचार नहीं किया जाता है।
- □ स्वीकृत अथवा विचाराधीन रचनाओं की सूचना यथासमय भेज दी जाती है। अस्वीकृत रचनाओं को लेकर किसी प्रकार का पत्राचार अपेक्षित नहीं है।
- □ **शीराज़ा** में समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियां भेजना आवश्यक है।

—सम्पादक

संध्या का यात्री

☐ पं० पीताम्बर 'पारखी'

अभी-अभी दोपहरी ही थी
लाल किरण थी दूर कहीं
पर ये पीड़ाएँ मिलकर
संध्या को निकट बुला लायीं

सरक रहा है अस्ताचल को
अतिरथ का रथ धीरे-धीरे
पहुँच रहा है अंतरिक्ष को
मेरा सामां धीरे-धीरे

कुम्हलाता है आनन ऐसे
चन्दा जैसे धीरे-धीरे
उतर रहा है यौवन का मद
तूफ़ाँ जैसे धीरे-धीरे

स्पन्दन-स्फुरण झगड़ बैठे हैं
कम्पन उतरा धीरे-धीरे
उतर रही है धूमिल छाया
इन नयनों में धीरे-धीरे

सीताएँ भरती जाती हैं
मस्तुलिङ्ग की धीरे-धीरे
भुला रहा हूँ गाथाएँ सब
गत अतीत की धीरे-धीरे

जब कशेरुका घिस जाते हैं
मेरु-दण्ड के धीरे-धीरे
सहलाती है मस्तक निंदिया—
क्षुधा, हृदय को धीरे-धीरे

अंग-अंग झुलसा जाता है
दृष्ट-कूट-सा धीरे-धीरे
यह असाध्य रोगों का मंदिर
ढहता जाता धीरे-धीरे

लाल-लाल संध्या-आंचल के
ओझल होता धीरे-धीरे
वरद-'सुधा' की बिछुरन-गाथा
गाता कोई धीरे-धीरे,

कवि-रवि-रथ बढ़ता जाता है
हों संवर्तक नीले-पीले
लाल गुलाबी संध्या-तट पर
पहुंच रहा मैं धीरे-धीरे

—०—०—

आशा

□ विष्णु भारद्वाज

सांझ ढलने लगी,
अब तो आ जा
ऋतु बदलने लगी,
अब तो आ जा

अब तो आ जा कि साये घने हो चले
फिर से बांहों में आ और लग जा गले
नैन पथराये राहें तेरी देखते
आस जीने की मरती रही उमर भर
फिर से पलने लगी
अब तो आ जा......

सूने अम्बर घिर आई यह कैसी घटा
और पन्छी अकेला भटकता हुआ
तेरी मुरली की धुन कान में जो पड़ी
जाग जाने को सांस थी रुक रही
फिर सम्भलने लगी
अब तो आ जा...

रात भी आ गई गुनगुनाती हुई
मीठी मीठी-सी लोरी सुनाती हुई
यह सुहानी घड़ी भी चली जाये न
मेरी माथे की बिन्दया सरकने लगी
लट मचलने लगी
अब तो आ जा......

—०—

हिन्दी कविता का वर्तमान परिदृश्य और जम्मू-कश्मीर की हिन्दी कविता

□ डा० त्रिलोकीनाथ गंजू

प्रस्तुत लेख का शीर्षक यद्यपि हिन्दी कविता के एक ही विकास-क्रम के दो विभिन्न भौगोलिक परिवेशों का समकालीन अध्ययन है, तथापि प्रकृति और प्रवृत्ति के आधार पर भाषा और साहित्य की एक निजी—वैयक्तिक भौगोलिकता अपनी अभिव्यक्ति में सन्निहित हुआ करती है। वास्तव में किसी भी साहित्य की अपनी परिनिष्टता उस भाषा के व्यवस्थित आँचल से अनुस्यूत होकर जुड़ी रहती है। इसका प्रमुख कारण यह भी है कि देशज की भाषिक-इकाई अभिव्यक्ति के माध्यम के लिए बहुत आवश्यक हुआ करती है जो मध्यदेशीय हिन्दी भाषा की अपनी प्रकृति है। हिन्दी भाषा और साहित्य का विकास सांस्कृतिक अवधारणा के आधार पर एक काल-व्यापी परम्परा का एक अक्षुण्ण वोध है। अत: इस प्रकार की आशंका हिन्दी साहित्य और इसकी आंचलिकता के परिप्रेक्ष्य में उपस्थित नहीं हो सकती है। हिन्दी भाषा भारत की राष्ट्रभाषा के अतिरिक्त भारतीय जनमानस के सांस्कृतिक वाङ्मय की प्रभूतपूर्ण संवाहिका भी है। अतः इस सांस्कृतिक दायित्व को कैसे नकारा जा सकता है। साहित्य सृजन की परम्परा से—हिन्दी वाङ्मय का विकास हिन्दीतर प्रदेशों में विगत ऐतिहासिक युगों से होता रहा है और अब भी इस सृजन का क्रम चल रहा है। यह बात दूसरी है कि राजनीति के संकीर्ण दायरों की नारेबाजी ने इस पर नया रंग चढ़ाना चाहा। जम्मू-कश्मीर राज्य एक अहिन्दी भाषा-भाषी प्रदेश होने के बावजूद भी हिन्दी साहित्य के सृजन में सदा ही साथ-साथ रहा है। यह एक विस्मय का विषय है कि जिस समय ब्रजभाषा के मोहक शृंगार काल में हिन्दी का सृजन हो रहा था—उस युग में कश्मीर की मंत्रपूत तपस्विनी-रोपुं-द्येद (रोप्य दिदा) अपनी आयु के साठवें वर्ष, अर्थात् ई० १७२१, में ठेठ खड़ी भाषा में अपनी ज्ञानप्रभा का प्रस्फुटन कर रही थी :—

संतोष समाध एक आसन पर—
मैं यूं लगाया प्रेम का व्रत,

दृढ़ किसा वालवाशी अँखियो का—
सूक्ष्म रूप दिखाया तुम्हारी आज्ञा से,
तुम्हारे चरण हृदय में बसाया ।

अपने घर आया आप गुसाई—
जो कुछ मैं थे सो अब नाही,
यह बोध आया गुरु की बढ़ाई—
जिस गुरु ने दिया सत का तत्त्व बताई,

कौन जाने तेरा स्वभाव
प्रभाव परमानन्द जी
जो स्मरे हृदय में पावे
जैसी प्रभा भास्कराजी ।

(रूप भवानी० ज्ञान खण्ड—३६, ३७, ९३)

यद्यपि हिन्दी कविता की अछिन्न परम्परा चिर प्राचीन है किन्तु कालगणना के आधार पर इसका श्रीगणेश पूर्व मध्यकालीन शतकों से सिद्ध, सामन्त, जैन अपभ्रंशों से होकर आदिकाल, भक्तिकाल, रीतिकाल से होकर आधुनिक भारतेन्दु काल की नव्य जागरूक चेतना में अग्रसर होती रही । द्विवेदी काल के संस्कारों में पल्लवित होकर छायावाद-युग की मांसलता से पुष्ट होकर प्रगतिवाद की जनवाणी में मुखरित होकर उभर उठी । तब से लेकर आज तक हिन्दी कविता ने कितने कलेवर बदल लिए और कितना कुछ नया लिया, यह एक स्वतन्त्र विषय है । सांकालिक जनवादी लोक-चेतना ने समाजार्थिक तथा मनो-ऐतिहासिक धरातल पर कितने ही ऐसे प्रश्नों को लाकर और कितने नव-शीर्षकों को उद्घोषित करके हिन्दी कविता को व्यक्तिवादी कारण से बाहर निकालकर जनमानस के चिन्तन का अन्तः-बाह्य स्वरूप सामने लाया । आज के इन युग-वैतालिकों में अज्ञेय जी, केदारनाथ अग्रवाल, सुमन जी, त्रिलोचन शास्त्री, नागर्जुन, मुक्तिबोध, डा० रामविलास शर्मा, भारत भूषण, शमशेर, सहाय आदि युग सापेक्ष हिन्दी कवियों ने इस नव्यधारा का संपोषण करके—काव्यात्मक अभिव्यक्ति में एक युगान्तरवादी परिवर्तन लाया । संभवतः प्रस्तुत हिन्दी कविता की अवस्था-परक यह मनोवृत्ति दिग्भ्रान्त नहीं कही जा सकती है। विश्लेषित तथ्यों के आधार पर यह स्वीकारना अधिक तर्कसंमत है कि नव्य-चेतना के आधार पर हिन्दी कविता नव-अन्वेषण की दिशा में निश्चय ही अग्रसर है । युग-प्रहरी अज्ञेय जी के शब्दों में—"प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, यह उस सत्य का साधन है जिसे कवि प्रेषित करना चाहता है ।"—स्पष्ट तो यह है कि प्रयोगवादी हिन्दी कविता ने एक महत्त्वपूर्ण योगदान नई चेतना के खोज़ में प्रस्तुत किया । प्रयोग के नये-बोध, मानवीय संवेदनाओं की अन्तः पैठ, शिल्पगत सौष्ठव का स्वरूप, जनमानस की अन्तः-बाह्य व्यथा की टूटन, आसन्न विभीषिका का विकृत चेहरा आदि नये आयाम के कुछेक बिन्दु उन्मेषित हुए । संभवतः इन सबका निशंक वर्णन आने वाला कल ही कर पाएगा । तार-सप्तक और प्रतीक-पत्रिका का मन्थन करने के उपरान्त यह बात खुल कर सामने आती है । इस तथ्य के परिप्रेक्ष्य में दो विभिन्न मत नहीं हो सकते हैं कि—तार-सप्तक के कुछ कवि विचारों में समाजवादी और संस्कारों में व्यक्तिवादी परिवेश से जन्मे थे । फिर भी दिशावलोकन का उनका परिचालन तूफानी-युद्धपोत से कुछ कम नहीं था जिसके फलस्वरूप साठ से भी

अधिक कविता-शीर्षकों ने अपना ताना-बाना बुन लिया और अन्ततः विचार-कविता ने जन्म पाया।

इस तथ्य को स्वीकारने में हमें किंचित् भी झिझक नहीं होनी चाहिए कि जम्मू-कश्मीर प्रदेश की हिन्दी कविता और इसकी युग सापेक्षता सदा से ही हिन्दी-भाषाभाषी अभिव्यक्ति से सह-अस्तित्व बना के जुड़ी हुई है। अतः हिन्दी भूभाग की प्रत्येक साहित्यिक विधा को इन अहिन्दी कवियों ने अपनी अभिव्यक्ति में ढालने का सायास प्रयत्न किया क्योंकि महत् से—लघु का सह-अस्तित्व बनाये रखना प्रकृति का अटल नियम है। किसी भी साहित्यिक अभिव्यक्ति में महत्त्वपूर्ण प्रश्न उस साहित्य के स्वपोषित परिवेश और संपोषित परिवेश का हुआ करता है। जहाँ भी स्वपोषित अभिव्यक्ति का उन्मेष होता है वहाँ निश्चय ही एक अपना परिदृश्य उभर कर सामने आता है और जहां पर संपोषित अभिव्यक्ति का उन्मेष होता है वहाँ अवश्य ही परिदृश्य के गठन में इतरता का आना नैसर्गिक बनता है। सम्प्रति हिन्दी कविता की काल चेतना और भारतीय जनमानस की आकुल एवं व्याकुल मनःस्थिति में एकरूपता का जो आभास एक समान स्तर मिलता है, उस मनो-व्यथा के परिदृश्य में कहीं भी असमानता नहीं है। सांकालिक विषमताओं को झेलने की विखण्डित अस्मिता का अनुभव हम सबको एक ही दायरे में लाता है। अतः हिन्दी कविता का परिदृश्य हिन्दी एवं हिन्दीतर भूभागों में मात्र—प्रसूत-शैली में ही विभिन्न हो सकता है। शेष व्यापक पीड़ा की क्षणिक और क्षणान्तर संवेदना और इसकी कटु अनुभूति हम सब में समान है। जहाँ हम सब कवि अज्ञेय जी की कालातीत अनुभूति में एक साथ आ जुटते हैं :—दुःख सबको माँजता है/और/चाहे स्वयं को मुक्ति देना वह न जाने/किन्तु/जिनको माँजता है/उन्हें यह सीख देता है कि सबको मुक्त रखे।

वास्तविकता तो यह है कि व्यवस्था के अपने में सिमटते दायरों ने जीवन के व्यावहारिक बोध को आहत और आक्रान्त किया। मुक्तिबोध की प्रसिद्ध कविता अन्धेरे में हम सब खो गये हैं/इस अनिर्दिश यात्रा में कभी हिटलर सा दानव और कभी गान्धी जी सा मानव आकर इस धरती की तुला का संतुलन बिगाड़ता है और कभी इसका संतुलन जुड़ाता है। इन तथ्यों का विद्रोही स्वर प्रयोगवादी कविता से निसृत होकर निरन्तर नई कविता, अकविता, सनातन-सूर्योदयी कविता, युयुत्सावादी कविता, कबीरपंथी कविता, कोलाज कविता, नंगी कविता, गलत कविता, सही कविता, आँख कविता तथा हिमगिरि के शत-सहस्र छूटते-झरनों के समान फूट कर मानवीय संवेदना को अभिव्यक्त करते आएँ हैं। वृहद् हिन्दी कविता की व्यापक-मनीषा और हिन्दीतर भावबोध की मनीषा में बिखरते जनमानस का उबलता प्रश्न रेखाओं में समान होकर भी रंगों के वैविध्य से परिदृश्य में निश्चय ही भिन्न है, किन्तु यह वैविध्य भारतीयता का जीवन्त है और आत्म प्रज्ञा का अछिन्न और अकाट्य सूत्र—युगों-युगों से चला आया है जिसको व्यावहारिक भाषा में अनेकता में एकता और एकता में अनेकता की संज्ञा दी है। सम-सामयिक हिन्दी कविता में एक सिकुड़ता तथा क्षयग्रस्त होता हुआ मानव जीवन—सामने झांक रहा है और संवेदनाओं की तपती—रेगिस्तानी रेत पर भुना जा रहा है। आज वह बारूद के टीले पर बैठ कर सुस्ताने का उपक्रम तो कर रहा है पर कब, किस क्षण यह बारूद विस्फोटित होकर उसका ध्वंस कर बैठेगा वह नहीं जानता है। इस ध्वंस के आयाम गिनती में अनन्त है और व्यवस्था के हर एक अणु-अणु तथा कण-कण में इसकी पैंठ है फिसलते क्षणों की कौंध, अनदेखी और अनचाही—विषाक्त माहौल की जानलेवा

परिस्थिति तो समूची हिन्दी कविता की मुखर अभिव्यक्ति है । कवि सुतीक्ष्ण कुमार (जम्मू) की गहराई अभिव्यक्ति में :—/जीवन जो उसका था कभी/अब रहा नहीं/है उसका/किसी और का/हो गया है/कल किसी और का हो जाएगा/आज तो अपने जीवन की इकाई भी छूट रही है संत्रास की यह विभीषिका पूरी मानवता को—दबोच बैठी है । हिन्दी कवि उदयभान मिश्र इसी पीड़ा की समीकृति करते हुए किस कद्र अपने से टूटा हुआ है :—/रोज एक सुबह/मेरे हाथों से छूट जाती है/रोज एक शाम/मेरे आगे ही टूट जाती है/और एक दिन/गुज़र जाता है/मेरे ऊपर से ।

इस विषम पीड़ा की कड़वाहट—कितनी भयंकर है मेरा ही दिन मेरे भीतर से, मेरे आसपास के परिवेश को छूता, कंपाता और चीरता हुआ छूटा जा रहा है और मैं इस व्यवस्था को मात्र एक लाचार और निरीह होकर देखता रहता हूँ । अस्मिता का यह विखण्डन कितना जटिल होता जा रहा है और व्यक्ति की यह बिखरी इकाई आज कितनी पंगु होती जा रही है । हिन्दी कवि शमशेर—अपने अक्षर-स्वर को और उत्तेजित करके इस युग की पीड़ा को किन मर्मवेधी वाणी में गहराता हुआ कहता है :—/बात बोलेगी/हम नहीं/भेद—खोलेगी/बात ही/सत्य का मुख ।

रमेश मेहता (जम्मू) कवि शमशेर की घुटन को व्यक्त स्वर में सत्य का मुख खोलकर बात को कहे बिना नहीं रहता है :—/फिर भी एक प्रवंचना है/एक अनजाना छल है/जो उसे अपना/अस्तित्व बनाए रखने पर/बाध्य किए हुए है ।

इस प्रकार का आक्रोश—कसमसाहट में कुचलता अपनापन और अपनी ही व्यवस्था की कारा में कैदी होता हुआ अपना एहसास आज हिन्दी कविता की प्रमुख मुखरता है । इस प्रकार की युयुत्सावादी कविता का स्वर कैलाश वाजपेयी, श्याम परमार, राजकमल चौधरी, जगदीश चतुर्वेदी आदि-आदि की अभिव्यक्ति में मिलता है । आक्रोश की चीख में मानवीय संवेदना का प्रकम्पकारी स्वर साठवें दशक के उत्तरोत्तर कालखण्डों में उग्रतर से उग्रतम होता गया और अब भी, जबकि विचार-कविता का परिधान पहन के हिन्दी कविता आगे की ओर जा रही है । फिर भी परिदृश्य का स्वरूप एक समान है । हिन्दी कवि मुक्तिबोध ने अपने भास्वर स्वर में इस आक्रोश को ब्रह्मराक्षस की संज्ञा प्रदान करके एक नई फेंटैसी उकेरी है :—/बावड़ी की उन घनी गहराइयों में शून्य/ब्रह्मराक्षस एक बैठा है ।

बावड़ी का बिम्ब तरल-चेतना का जनवादी स्रोत है और शोषण की अर्थ-व्यवस्था का निजी स्वार्थ समेटे एक ब्रह्मराक्षस वहाँ पर बैठा है । ब्रह्म + राक्षस दो अनपेक्षित शब्द युग्म का बिम्ब है, अन्तः राक्षस और बाह्य प्रदर्शन में सफेद खद्दरधारी । मुक्तिबोध के इसी बिम्ब को नये आयाम में स्वर फूंक कर शशि शेखर तोषखानी (कश्मीर) अधिक कर्कशता से हुँकार कर कहते हैं :—/अहम् का उद्घोष यह ? या आत्महत्या का करुण संगीत/मुट्ठियों में गगन का विस्तार ? /या एक जलता सत्य तर्कातीत हड्डियाँ चटखा न डाले मुट्ठियों में उबलता आक्रोश ।

मुट्ठियों में चिलबिलाता अमर्ष कबूतर के समान पर फड़फड़ा रहा है पर विवशता की घुटन कितनी शोचनीय है । निश्चय ही यह आत्महत्या का एक करुण संगीत है । कवि अशोक कुमार (जम्मू) की अभिव्यक्ति ने इस विवस्था के विघटन को बड़ी सादगी से पहचान लिया है । ठीक अचल वाजपेयी के समान, जो विगत को परख कर इस निष्कर्ष

पर पहुँचा है :—/"सीढ़ियां ढोकर ही एक अपाहिज पीढ़ी/स्वर्ग जा पहुँचती है" / इस बिलखती स्थिति का बोध जम्मू के हिन्दी कवि अशोक सन्नाटे की चीख के समान सामने लाकर कहते हैं :—/खोखले एहसास के कन्धे पर टिकी शाम/

कौन जानता था कि आजादी के बाद विसंगति का ऐसा विकराल परिवेश समूचे सत्त्व को दबोचेगा। प्रो० सुभाष (जम्मू) ने समय पर नाड़ी का क्या ही भव्य व्यंग्यपरक बिम्ब अपनी अभिव्यक्ति में प्रस्तुत किया है :—/हम भाषा-भाषियों को/मूक/और पंगु कर दिया है/भारतीय आपात-काल के दौर में फणीश्वरनाथ रेणु ने भी गद्य-काव्य में यही बात दोहराई थी :—लौटा चुके हैं हम अपनी भाषा उन्हें, जिसकी छुरी से हमारी ज़बान कट गई है। स्वार्थ की लोलुपता में हम कहीं अब बेघर न हो जाएँ क्योंकि व्यवस्था के दावेदार इस हनन में अपना अग्रिम-आरक्षण समझ कर ही प्रयत्नशील हैं। प्रो० सुभाष (जम्मू) वैतालिक के समान गुमराही के इस छल से सचेत करते हुए कहते हैं—/"घर को बचाओ/यह घर तुम्हारा/गिरने वाला है/" हिन्दी कवि गिरिजा कुमार माथुर प्रो० सुभाष के स्वर में स्वर मिलाकर एक ही परिदृश्य का बिम्ब सामने लाकर कहते हैं :—/घर में भरा है धुँधलका/स्लेटी अँधेरा/धुंधले हैं टेबिल के नक्श/

डॉ० ओम प्रकाश गुप्त (जम्मू) अपने युग की विसंगति का परिचय देते हुए अपने से ही कितने कटे-कटे और निःसंग तथा विसंग दिखाई दे रहे हैं :—/अपने लम्बे नाखूनों से/नोच लिए है/हमने/अपने ही चेहरे/फूट रही आँखें। हिन्दी कवि माचवे जी ने इसी बिम्ब को अधिक सशक्त शैली में पिरोकर इस विवस्था का अधिक बोध प्रस्तुत किया है :—/मेरे रक्तकोश शरमाते हैं/इस सभ्यता के चाकू के आगे आने में/जानता हूँ चाकू बड़े पैने—चमकदार पालिश वाले/आटोमेटिक हैंडिल विहीन/

आज के जन-ज़ीवन की बिखरती अस्मिता, भीड़ में टूटता अपनापन, संवेदनाओं के निरन्तर बरसते कशाघात, उसाँसों की छूटती एक लम्बी कतार, अपने ही चेहरे से अजनबी का बोध तथा समाजार्थिक (Socio-Economic) चक्की के दो पाटों में पिसता हुआ अपना अस्तित्व ये प्रमुख अवसान है आज के जन मानस के। यह कैसे संभव हो सकता है कि एक सचेतक साहित्यकार इन अवसान-प्राय विघटनों से अनदेखा अथवा अनसुना रह सकता है। वह दर्शक नहीं अपितु वह इस प्रहारक कटु सत्य को भोग चुका है और अनागत में भी—अनपेक्षा से भोगने के लिए तैयार बैठा है। डॉ० रत्नलाल शान्त इस संवेदना को झेल चुका है। यही कारण कि यह युग प्रहरी कवि (कश्मीर) मर्म विकम्पी पंक्तियों से पाषाण हृदय को चीर कर कहते हैं :—/भूखी जीव जब तेज़ छुरी सी/जांघ को काटती है/तो गुणाक्षर न्याय का इन्तज़ार बेकार है।

डॉ० शान्त और हिन्दी कवि मुक्तिबोध के चिन्तन में भले ही देश-काल की परिधि और व्यवस्था का अन्तराल है पर चिन्तन लक्ष्यबेधी—परिदृश्य कितना आमना-सामना करता है। अन्तर केवल बिम्ब-विधान की शैली में है पर तथ्यों का धरातल कितना समान है, मुक्तिबोध के शब्दों में :—/मत बनो दार्शनिक बनावटी/तुम क्या हो/कैसे हो, क्यों हो/इसका उत्तर/टीन के कनस्तर ही देंगे /

"गुणाक्षर न्याय" और "टीन के कनस्तर" इन दोनों सशक्त बिम्बों में आधुनिक जनमानस की विपन्न अवस्था का चुबता बोध है। अशोक जेरथ (जम्मू) प्रतीयमान ध्वनि की कसमसाती इसी घुटन में चीखता हुआ कहता है :—/सरकारी दुकान के बाहिर/आठ

घण्टे खड़ा रहने के बाद/खाली टीन बजाता/लौट आया हूँ/व्यवस्था के इस अजनबीपन और खालीपन ने किस सीमा का मोहभंग किया। युवा कवि उपेन्द्र रैणा (कश्मीर) इस रेत की बनी दीवार को खिसकता देखकर कितना आक्रोशित होकर कितना सशक्त बिम्ब बांधकर फूट पड़ता है :—/"सारा शहर दर्दनाक कहानी सुनकर/अपना नाम तक भी खो चुका है/" गोया अब नाम से अनाम हो गये। कवि गालिब के शब्दों में :—/दर्द का हद से गुज़रना/दवा हो जाना/व्यवस्था की इस घिनौनी तस्वीर का रंग कब का उतर चुका है। जो भी अब धुन्धला दिखाई दे रहा है उस पर युग की कालिख पोती जा रही है। युवा कवि महाराज कृष्ण संतोषी की गुरु गंभीर अभिव्यक्ति में : —/कब बनी धुआँ जिन्दगी/हमें खबर नहीं होती/।

कवि संतोषी (कश्मीर) की तिरछी रेखाओं में इसका पतन कितना आमर्षजनक बिम्ब में निकल आया है :—अस्तित्व/एक मृत घोड़े की तरह/लुढ़क गया है/पहाड़ी ढलान से/", आश्चर्य तो यह है इस व्यवस्था के घोड़े से हमें कितना तकाजा था। पर यह स्वयं ही पहाड़ी ढलान से फिसल कर चूर-चूर हुआ। तरुण कवि अग्नि शेखर (कश्मीर) की प्रतीक्षा कालातीत होकर उस उजले भविष्य के लिए कितनी व्यग्र है :—/उस उजली सुबह को देखने के लिए/मैंने जीवन की कुछ अन्तिम सांसें/कमीज़ की तहाकर उलटाई/ अस्तीनों में छिपा रखी हैं/अग्नि शेखर के अन्तस्तल में उपनिषद् कालीन ऋषियों का सा आक्रोक्ष तथा भव्य सहनशीलता में चिर प्रतीक्षा है। हिन्दी कवि अज्ञेय जी भी बिम्ब-विभिन्नता के बावजूद भी इसी दिशा की एक बौद्धिक कामना करता है :—/मैंने आकाश से मांगी/आंख की झपकी-भर-असीमता-उधार/।

आज की पीढ़ी के हिन्दी कवि, चाहे वह किसी भी दिशान्तर में बैठे हों, एक महान् विप्लव के सेमारम्भ में अग्निसाधन का अनुष्ठान कर रहे हैं। आज वह क्रान्तिदृष्ट्रा वेद-व्यास के आक्रोश में :—/परोपकार: पुण्याय, पापाय परपीड़नम्/अर्थात् पुण्य के लिए परोपकार पाप के लिए पापी का पीड़न करना अनिवार्य है। इन कवियों की मन:स्थिति न तो निरुद्देश्य है और न ही दिशा विभ्रान्त है। हाँ, साध्य तक आते-आते साधनों में जो भी विविधता का स्वर मुखरित होता दिखाई दे रहा है, उसमें भले ही कुछेक स्वार्थपरक सफेदपोश लोगों को दिग्भ्रान्ति का अचम्भा और नारेबाज़ी का कौतुक लग रहा हो, पर इसके पीछे सुप्त ज्वालामुखी की मुद्रा है। विस्फोट का प्रलयंकारी धमाका आसन्न भविष्य में साफ दिखाई दे रहा है। कवयित्री क्षमा कौल (कश्मीर) युगसापेक्ष इन धड़कनों को भांपकर कहती हैं :—/अरे नंगड़/तुम्हारे नंगेपन से/कौन हुआ सामाजिक/कभी-कभी ओढ़कर बादलों का वसन/कवयित्री उषा व्यास छवि (जम्मू) को निर्भीक आस्था में सुदूर अनागत का अटल विश्वास है :—दिवस काला हो गया है / शहर का कोलाहल/ कच्ची नींद जागे शिशु की तरह/रात के कन्धे लगा/।

वर्तमान की इस व्यवस्था की पीड़ा को ढोना आने वाले कल के लिए सपाट राह का निर्माण है। हिन्दी कवि केदारनाथ सिंह चिर प्रतीक्षा के इस सूत्र को थामकर क्षमा कौल (कश्मीर) और उषा व्यास (जम्मू) के अनुरूप ही अनागत कल के लिए कितने आश्वस्त है :—/एक नन्हा बीज मैं—अज्ञात नव युग का/आह, कितना कुछ सभी कुछ/।

व्यवस्था मानवीय समाज के सह-अस्तित्व में अनुस्यूत माला हुआ करती है जो एक सूत्र में आबद्ध होती है। जब भी व्यवस्था में भ्रष्टाचार, अनैतिकता, स्वार्थ-परकता,

लोलुपता, अमानुषिक कृत्यों का बोलबाला इस हद तक बढ़ जाता है कि माला का सूत्र जर्जरित होकर टूट जाता और माला के दाने बिखर जाते हैं। हर दाना क्रांति का आक्रोश बनकर भड़क उठता है और विद्रोह मुखर हो जाता है। राष्ट्रीय एकता के नाम पर हमारे सठियाए और गठियाए सफेदपोश नेता विगत चार-दशकों से तोड़-फोड़ और निजी स्वार्थ के बिना क्या कर सके हैं। समसामयिक इस असहनीय पीड़ा को हिन्दी कवि उदयभान मिश्र और जवाहर रैणा (जम्मू) एक ही परिस्थिति का उद्‌बोधन करते हुए कहते हैं। एक में विवशता है इस व्यवस्था के छूटने की और दूसरे में परवशता अनचाहे माहौल की है। कवि मिश्र :—रोज़ एक सुबह/मेरे हाथों से—छूट जाती है/रोज एक शाम/मेरे आगे ही टूट जाती है/और एक दिन गुज़र जाता है/मेरे ऊपर से/। श्री रैणा (जम्मू) का कथ्य भी यही है किन्तु आयाम विभिन्न है :—/हर सीधी सड़क के बाद/एक मोड़/अनचाहा अन्तर को और आकुल देता है/कोई बेशर्म चौराहा /।

आज की कवि प्रतिभा इस स्वार्थपरक अन्धता की पहचान गई है। तथ्यों का शुमार करना अब आपे से बाहिर हुआ है। कवयित्री सरिता शर्मा (जम्मू) व्यवस्था की इस अलङ्घय-कारा को तोड़ने में स्वयं को निस्सहाय समझकर घुटन में दबी-दबी सी होकर कहती है : —"एक विवशता है मानव की/उसे जीना पड़ता है।"

यह विवशता अथवा परवशता एक रचा-रचाया षड्‌यंत्र है। डॉ० त्रिलोकीनाथ (कश्मीर) ने अपनी अभिव्यक्ति में इस विवशता के बिम्ब को इतिहास सापेक्ष बिम्ब में उतारने का सफल प्रयोग किया है :—"/यह परवशता नहीं/जन्मान्ध धृतराष्ट्र की सी/इसका आयाम माँ गान्धारी का सा/—जो विवश होकर/युवा स्वप्नों को कुचलकर/सत्य का असत्य से/समन्वय करके/जानबूझकर/तमिस्र भीषण/यातना भोग रही है/।" यह कैसी विडम्बना है कि व्यवस्था ने जनसत्ता को पंगु बनाकर हम से हमारी ही बैसाखियां छीन कर हमें निस्सहाय बना डाला। डॉ० सोमनाथ कौल (कश्मीर) इस उभरते माज़ूर-समुदाय को देख कितने ही चिन्तित हैं :—/मेरी बैसाखियां मत छीनो/तुम मेरी—बैसाखियां तोड़कर/मुझे अज्ञात गहरे खड्ड में/सिर के बल गिराना चाहते हो/हिन्दी कवि वेणु गोपाल ने इस विवशता की मर्मान्तिक पीड़ा का स्वरूप अधिक स्पष्टता से सामने साफ गोयी से लाया है : —/भागना चाहते हुए भी/भाग नहीं पा रहा हूं/इस गले से चिपटी व्यवस्था से/।

अरिक्तता का यह संत्रास शायद अब रोकने पर भी नहीं रुकेगा। इसका निरन्तर सरकना खतरे से खाली नहीं है। डॉ० (श्रीमती) मोहिनी कौल इस विध्वंस से कितनी आकुल है :—"/कालिख-पुते दिन का उगना/इस व्यवस्था की पीढ़ी का/निश्चय दम तोड़ने का संदेशा है।" डॉ० मोहिनी (कश्मीर) के इसी सशक्त आयाम को सपाट करते हुए हिन्दी कवि शिवचन्द्र शर्मा का कसकता व्यंग्य कितना सार्थक हुआ है :—/सांझ होती है बांझ/कुछ बदशकल होती है/कुछ मनहूस होती है /। आज की व्यवस्था ने भ्रष्टाचार, घूसाखोरी, निचले तबके की निरीह विपन्नता, चापलूस चाटुकारों की खुशामन्दी, अस्मत की सौदाबाजी, सुरा और सुन्दरी का छलकता दौर, सामाजिक न्याय के नाम चाचा-भतीजावाद और न जाने क्या-क्या शीर्षक जोड़कर अपने को सार्थक किया, किन्तु इन सब को फलता-फूलता देखकर प्रतिभाशील कवि का मोहभंग हुआ। गांधीवाद की लाश को ढोने वाले रंगपीठ पर मानव का और नेपथ्य में दानव का अभिनय कब से करते रहें। हिन्दी कविता के युग प्रहरी स्व० धूमिल के शब्दों में :—/तेली की घानी है/जिस में

आधा तेल है/और आधा पानी है/" पूरा राष्ट्र एक—बूचड़खाने से कम नहीं, यह सब राष्ट्र कर्णधार से लेकर चौथी श्रेणी के चपरासी पर्यन्त का नैमत्तिक कृत्य है। कवि मोहन निराश (कश्मीर) इस साँकालिकता की विषम विडम्बना को एक युगदृष्टा साहित्यकार की तरह मुद्दों को आंककर कितनी निर्भीक चोट मारता है :—/वैसे तुम मांगते हो इतिहास। मैं/और कितनी सारी तिथियों के साथ/दे सकता हूं/दो खूबसूरत सी मृत्यु तिथियां। हिन्दी कवि चन्द्रकान्त देवताले मानो निराश जी से पूछना चाहते हैं कि यह मांगने वाले कौन हैं :—आदमी की खाल में/गधे और भेड़िये का/आधा-आधा भेजा लिए/घूमते, राजनीति के झण्डाबरदार/वस्तुत: इन्हें देकर कुछ भी नहीं मिलेगा।

युग की इस मुखर पीड़ा को सांकालिक इतिहास क्या लिख पाएगा, क्योंकि वह सरकारी और गैर सरकारी आंकड़ों को जुटाकर जो भी लेखा-जोखा जुटाएगा, उसमें युग की दबी सिसकियां, विवशता की तड़पती छटपटाहट नहीं उभर सकेगी पर साहित्य की मुखर वाणी बात बोलेगी, हिन्दी कवि शमशेर जी के शब्दों में :—/बात बोलेगी/हम नहीं/भेद खोलेगी/बात ही/सत्य का मुख/। कश्मीर के युवा कवि उपेन्द्र, इसी तथ्य को बदले आयाम में दोहराता है :– मेरे पेट में एक मुंह पलता है/जो हर समय/बोलता रहा है/कहे देता हरेक/घटी हुई घटना को।

प्रपीड़न और उत्पीड़न की यह ध्वंस प्राय-व्यवस्था और इसका विभीषक संत्रास हिन्दी कविता का एक प्रखर एवं मुखर स्वर है। इसकी अभिव्यक्ति भले ही विभिन्न आयामों में विभाजित होकर निसृत हुई हों तथा शिल्पगत स्वरूप में अनमेल रखती हों—पर अन्त:स्थल के अनुभूति की संवेदना और इसकी अनुगूँज में कहीं भी विभेद एवं प्रभेद नहीं है। व्यवस्था के इस हमाम-घर में हम सब नंगे हैं। मेरी ही निजी अभिव्यक्ति में :—"/व्यवस्था, महज़ एक कीड़ा है/वह भी रेशम का मुलायम कीड़ा/जो शोषण के अभियान में/हरी पत्तियों को रात दिन चाट चाट कर/सो जाता है/फिर लोलुपता की/उगलती तार से/मोर्चा बांधकर/अपनी ही कारा में/कैदी बनकर खोजता है।।" विभ्रान्त विडम्बना तो यह है आज व्यवस्था अपने ही अन्धेरे में भटक गई है। रमेश मेहता (जम्मू) की अभिव्यक्ति में :—विवादों में जकड़ी × × × /कण्डक्टर सरकार/

□

कहानीकार मण्टू—समीक्षात्मक परिचय

☐ डॉ० बृज प्रेमी

उर्दू साहित्य में लघु कथा का प्रथम दीपक मुन्शी प्रेमचन्द ने प्रदीप्त किया। इस दीपक के प्रकाश को सजाद हैदर मुलाज़िम, नियाज़ फतेहपुरी तथा अन्य लेखकों ने बढ़ाया। इन लेखकों के चिन्तन एवं जिज्ञासा से उर्दू कहानी में उस भूमि की सुगन्ध का सृजन हुआ जिस भूमि की माटी पर इन लेखकों ने जन्म लिया था। काल्पनिक विचार-धारायें, अप्राकृतिक तत्त्व तथा प्रभावित जीवन के मार्मिक वातावरण की समस्याओं ने इस कला में नवीनता का सृजन किया। प्रेमचन्द ने पाश्चात्य काव्य कला से प्रेरणा प्राप्त करके अपनी लेखन कौशल को प्रारम्भ किया। किन्तु यह बात वर्णनीय है कि यह प्रेरणा पश्चिम के यथावत् अनुकरण तक ही सीमित नहीं थी अपितु उन्होंने अपने कला कौशल से अपने विषय को निरीक्षण रूपी अग्नि में तपाकर उसे सोना बना दिया। प्रेमचन्द ने न केवल देश एवं राष्ट्र से सम्बन्धित विषयों को ही अपनी रचनाओं का आधार बनाया अपितु उन्होंने अपने रुच्यनुकूल विभिन्न विषयों की भी पूर्णरूपेण विवेचना की। यथा एक विचारधारा का सृजन करके इसे अंगारे सम्प्रदाय के कलाकारों को सौंप दिया। अन्त में उन्होंने "कफ़न" जैसी उत्कृष्ट कहानी की रचना करके एक नई दिशा की ओर संकेत करके उर्दू कथा साहित्य में एक नये युग की नींव डाली।

बीसवीं शती के तृतीय दशक में जब प्रेमचन्द की काव्य कला उत्कर्ष को प्राप्त हो चुकी थी, उस समय अंगारे की कहानियां सामने आईं और प्रगतिशील आन्दोलन ने जन्म लिया। उर्दू कथा-साहित्य को एक नई दिशा मिली। इस समय उर्दू कहानी के क्षितिज पर कई नये चेहरे उभर कर आये जिनमें विशेषरूपेण कृष्णचन्द्र, बेदी और मण्टू वर्णनीय हैं। इस त्रिवर्ग ने उर्दू साहित्य के इतिहास में एक नया पृष्ठ जोड़ा एवं उर्दू कहानी को नई दिशाओं से परिचित कराया। यह उर्दू कथा-साहित्य का सौभाग्य था कि इसे प्रेमचन्द जैसे प्रतिष्ठित कहानीकार के उपरान्त मण्टू जैसा कहानीकार मिला जिसने अपने अनूठेपन से कहानी रचना-कौशल में नये चित्र उभारे।

मण्टू प्रकृति से ही विद्रोही स्वभाव के थे। शैशवकाल से ही घर में धनहीनता एवं

दारिद्रता ने जकड़ लिया था। अतः दारिद्रय का अनुभव इनके पाण्डित्य का एक भाग बन गया था। इनके पिता अत्यन्त क्रूर प्रकृति के थे परिणामतः ये पितृवात्सल्य को भी न पा सके। अतः प्यार, आत्मीयता एवं सहानुभूति के इस अभाव ने सादात (सैयद खानदानी) हसन को मण्टू बना दिया। इन के जीवन में अदम्य उत्साह, असाधारण अहंभाव तथा अन्य लोगों से स्वयं को चतुर जानने की जो शक्ति मिलती है वह उस क्षति की पूरक नज़र आती है जो पितृवात्सल्य को न पा सकने के कारण इन में उत्पन्न हुई थी।

शरीफपुर अमृतसर के मुस्लिम विद्यालय में प्रवेश पाने के उपरान्त मण्टू की अवज्ञाकारिता एवं चपलता में वृद्धि हुई एवं हिन्दूसभा महाविद्यालय में यही अवज्ञाकारिता और अधिक विस्तार पा गई। इस अवज्ञाकारिता एवं चपलता के कारण वह समवयस्कों एवं मित्रों के ध्यानाकर्षण का केन्द्र बिन्दु बन गया। अतएव "टामी" की संज्ञा से अभिहित किया जाने लगा था। विद्यार्थी जीवन में मुस्लिम विद्यालय के मुख्य-अध्यापक ख्वाजा मुहम्मद उमर जान विशेषरूपेण इस विद्यार्थी की चपलताओं से तंग आ चुके थे, तदपि इसकी असाधारण प्रतिभा से प्रभावित भी थे। सादत हसन "मण्टू" को चपलताओं के साथ-साथ समीक्षा करने की भी इतनी रुचि थी कि वे स्वयं को मुख्य अध्यापक का सुपुत्र बताकर स्थानीय पुस्तक विक्रेता से पुस्तकें उधार लिया करते थे और उन्हें पढ़कर उन्हें आधे मूल्य में बेच देते थे जिसके परिणामस्वरूप मुख्य अध्यापक को पुस्तकों का मूल्य अपनी जेब से चुकाना पड़ता था जबकि मण्टू इन पैसों से सिगरेट पीते थे और गर्व से कहते, "मैं घटिया किस्म के सिगरेट कभी नहीं पीता।"

मण्टू का प्रत्येक हाव-भाव आश्चर्यजनक था। शैशव के निश्चिन्त क्षणों से लेकर जीवन की अन्तिम घड़ी तक इन्होंने हर विषय में विचाराभिव्यक्ति के अनुपयुक्त ढंग अपना कर अपने लिये एक अलग रास्ता बना लिया। यह अकेलापन न केवल इनके व्यक्तित्व के विभिन्न पन्नों में ही दृष्टिगत होता है अपितु इसका प्रतिबिम्ब इनके साहित्य में भी झलकता है। शैशव में धन का अभाव, पिता की मृत्यु, सहृदयों और सम्बन्धियों की ओर से अस्वजनता, मित्रों का साथ छोड़ना, अधिकारों का छिन जाना, इन सभी समस्याओं की प्रतिक्रिया यह हुई कि वे मानसिक व्यग्रता से पीड़ित रहे एवं मानवीय सम्बन्धों के खोखलेपन का उन्हें पूर्णरूपेण आभास हुआ। मण्टू को प्रारम्भ से ही अपने इर्द-गिर्द एक विचित्र तन्हाई की संवेदना पीड़ित करती रही। इस तन्हाई से छुटकारा पाने के लिये लोगों के ध्यान को विभिन्न तरीकों से आकर्षित करते रहे। अपने जीवन एवं काव्यकला के क्षेत्र में पारम्परिक अनुकरण से परे हट कर इन्होंने अद्‌भुतता एवं अकेलेपन को दर्शाते हुये असाधारण सृजनात्मक प्रतिभा का परिचय दिया।

मण्टू अपनी बाल्यावस्था में किसी अल्लाहरक्खा नामक जादूगर के साथ भरी सभा में दहकते अंगारों पर नग्न पांव होकर चलते थे और इनके मुंह से उफ तक न निकलती थी। यद्यपि वहां लोगों की काफ़ी भीड़ एकत्र हो गई थी तथापि अल्लाहरक्खा के विश्वास दिलाने पर भी किसी ने समीप आने का साहस न किया था। मण्टू के अग्नि पर चलने पर यह साहस इनकी किसी क्षणभंगुर उत्तेजना का परिणाम नहीं है अपितु इस घटना के समक्ष इनका मनोवैज्ञानिक व्यक्तित्व भी सचेष्ट था। ऐसा प्रतीत होता है कि यह घटना इनके भविष्य की ओर एक महत्त्वपूर्ण संकेत था। मण्टू एक सृजक के समान पारम्परिक विचारधारा का परित्याग करके सर्वदा नवीन पद्धतियों की खोज में रहे, जिस

के परिणामस्वरूप इन्हें आजीवन विपत्तियों एवं कष्टों को झेलना पड़ा। इन्होंने जहां एक ओर अपने यश की पताकायें फहरायी तो वहीं दूसरी ओर इन्हें अपयश रूपी कलंक को भी सहना पड़ा।

बाल्यकाल से ही मण्टू अपने भीतर छिपी हुई सृजनात्मक कला को विभिन्न तरीकों से प्रकट करते रहे। श्रुतियां फैलाना इन्हें अत्यधिक रुचिकर था। वे विभिन्न प्रकार की श्रुतियां सुनाते थे जो दूसरे ही दिन घूम कर नगर में फैल जाती थीं। ये श्रुतियां मनोरंजक एवं रोचक हुआ करती थीं, यथा :—

१. अमरीका वालों ने ताजमहल ख़रीद लिया है और वे इसे बड़ी मशीनों के ज़रिये अमरीका ले जा रहे हैं।

२. लाहौर में ट्रैफिक के सिपाहियों को बर्फ के कोट मुहिया किये गये हैं।

३. मेरा फाउंटेन पैन गधे के सींग का बना है।

मण्टू ने अपने कुछ समवयस्कों के साथ मिलकर एक समिति का आयोजन कर लिया था। 'अंजुमन अहमकान,' इस समिति से सम्बद्ध लोगों का काम चित्र-विचित्र बातों से लोगों को परेशान करना था। निदर्शनार्थ मण्टू स्वयं भी कहते थे इस कलम के मुतेलक आप की निब क्या है? इस कमीज़ के मुतेलक़ आप का वटन क्या है?

मण्टू अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ से ही क्रान्तिकारी सिद्ध हुये। अपनी कहानियों के प्रथम संकलन "मण्टू के अफ़साने" को प्रकाशित करने के समय प्रकाशक को आदेश दिया कि वह पुस्तक का ऐसा आवरण बनाये कि लोग इसे देखते ही इनके प्रति अनाप-शनाप बोलना प्रारम्भ करें। कहानियां ऐसी लिखीं कि चारों ओर से वाह-वाह तथा हा-हाकार की आवाज़ें गूँज उठीं। प्रगतिशील लोगों ने प्रतिक्रिया-शीलता की संज्ञा से अभिहित किया एवं प्रतिक्रिया-वादियों ने प्रगतिशील तथा चालू नाम दिया। इनकी कहानियों पर इनके प्रति मुकद्दमे चलाये गये और इन्हें गन्दा तथा नीच प्रकृति का प्रमाणित किया गया। मदिरापान से छुटकारा दिलवाने के लिये इन्हें पागलखाने भेज दिया गया। किन्तु जब पागलखाने से छूट गये तो इनके मुख से वाक्य फूट पड़ा, "छोटे पागलखाने से निकलकर बड़े पागलखाने में आ गया हूं।"

मण्टू की एक विशेषता है इनकी यथार्थवादिता। मण्टू ने सर्वदा भावों तथा विचारों का यथार्थ रूप में वर्णन करने का प्रयास किया है। उन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता को बनाये रखने के लिये काफी कष्ट सहे। वे इस योग्य नहीं थे कि 'मृत्यो-परान्त किसी व्यक्ति का चरित्र धोबी से धुल कर आता है।' इस भाव की अभिव्यक्ति अपनी रूपरेखा के पुट "गंजे फ़रिश्ते" में इस प्रकार करते हैं :—

"मेरे इस्लाहखाने में कोई शाना नहीं, कोई शम्पू नहीं, कोई घुंघरू पैदा करने वाली मशीन नहीं, मैं बनाव-सिंगार करना नहीं जानता। आगाहशर की बैंगी आँख मुझ से सीधी नहीं हो सकी। मीराजी की ज़लालत पर मुझ से इस्तरी नहीं हो सकी और न मैं अपने दोस्त श्याम को मजबूर कर सका कि वह बरखुद ग़लत औरतों को सालियां न कहे।"

मण्टू वक्ररेखाओं में लिखते थे। अपनी बाल्यावस्था से लेकर मृत्यु पर्यन्त अनुवाद से लेकर रोचक कहानियों, निबन्धों, नाटकों तथा रूपरेखाओं तक, प्रत्येक क्षेत्र में वक्र रेखायें दृष्टिगोचर होती हैं। इन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में नये मार्ग ढूंढ कर अपनी पताकायें

फहरायीं । मनोवैज्ञानिक एवं लिंग-विज्ञान सम्बन्धी कहानियां लिखने का एक कारण यह भी है कि लोगों ने ऐसी कहानियों को व्यर्थ एवं निम्नकोटि का प्रमाणित कर दिया था, जिन में इन्होंने प्रचलित सिद्धान्तों के प्रति विद्रोह किया था । इन्होंने ज़िद में आकर ऐसे ही विषयों को अपनी कहानियों का आधार बनाया । यही कारण है कि सरदार जाफरी जैसे प्रगतिशील लेखक ने इनके विरुद्ध होने पर भी इन के विषय में लिखा :—

"मण्टू की अफ़सानानिगारी हिन्दुस्तान के दर्मियानी तबके के मुजरिम ज़मीर की फरियाद है । इसलिये मण्टू उर्दू का सबसे ज्यादा बदमान अफ़सानानिगार है और वह बदनामी जो मण्टू को नसीब हुई है, मक़बूलियत और शोहरत की तरफ कोशिश से हासिल नही की जा सकती । इसके लिये फ़नकार में असली जौहर होना चाहिये और मण्टू का जौहर उसके कलम की नोक पर नगीने की तरह चमकता है ।"

मण्टू का सबसे बड़ा देश मानवमित्रता था । इनकी रचनाओं में राजनैतिक अथवा सामाजिक सुझावों का कोई भाव नहीं मिलता । इन्हें विदित था कि धर्म एवं सम्प्रदाय की ललकार में केवल घृणा, धार्मिक पक्षपात एवं संकुचित दृष्टि छिपी हुई है । और इससे लाभ उठाने वाले इसका प्रयोग मात्र एक अस्त्र के रूप में करते हैं । वे इन कुरीतियों एवं षड़यन्त्रों का विरोध करते हुये दृष्टिगत होते हैं । अपनी कहानी सहाये में मण्टू लिखते हैं :—

"यह मत कहो कि एक लाख मुसलमान और एक लाख हिन्दू मरे । यह कहो दो लाख इन्सान मरे । एक लाख हिन्दू मार कर मुसलमान यह समझे होंगे कि हिन्दू मज़हब मर गया है लेकिन वह ज़िन्दा है और ज़िन्दा रहेगा । इसी तरह एक लाख मुसलमान कत्ल करके हिन्दुओं ने बिगुलें बजाईं होंगी कि इस्लाम खत्म हो गया मगर इस्लाम पर एक हल्की सी खराश भी न आई । वो लोग बेवकूफ हैं जो यह समझते हैं कि बन्दूकों से मज़हब शिकार किया जा सकता है । मज़हब दीन, धर्म, ईमान, यक़ीन, अक़ीदत—जो कुछ भी है, हमारे जिस्म में नहीं हमारे रूह में होता है, छुरे, चाकू या गोली से फ़ना नहीं हो सकता ।"

देश का विभाजन इनके समय की सबसे बड़ी घटना थी । इस से इनके मस्तिष्क को ठेस पहुंची । वे भारत और पाकिस्तान के विभाजन को अपने दिल से स्वीकार नहीं कर सकते थे । यद्यपि ये भारत से प्रवास करके पाकिस्तान में निवास करने लगे थे तथापि ये स्वयं को भारत जैसे विशाल देश का अंग मानते थे जहां इन्होंने जन्म लिया था । विभाजन के उपरान्त धर्म के नाम पर लाशों के ढेर लग गये और औरतों की इज्जत लूटी गई । यह सब देखकर मण्टू गुमसुम होकर चिल्लाये, :—

"हिन्दूस्तान आज़ाद हो गया, पाक़िस्तान आलमेवजूद में आते ही आज़ाद हो गया । लेकिन इन्सान दोनों मुल्कों में गुलाम था तअसुब का गुलाम, मज़हबी जनून का गुलाम, हैवानियत और बरबरियत का गुलाम ।"

मण्टू उच्चकोटि के कलाकार हैं । इनकी प्रतिष्ठा एवं अनूठेपन का सबसे बड़ा प्रमाण यही है कि इन का व्यक्तित्व एवं कला इनके समकालीन एवं इनके परवर्ती लेखकों के लिये अत्यधिक विवादग्रस्त विषय रहा है एवं इनकी अधिकांश कहानियों ने अत्यधिक आलोचना को जन्म दिया । कई लोगों ने इन्हें अश्लील लेखक की संज्ञा से अभिहित किया, जबकि कइयों ने इनकी कलाकृति के उत्तम उदाहरण ढूंढ कर सामने रखे । वस्तुतः इन्होंने

भारतीय सभ्यता के दृष्टिकोण से सामाजिक, बौद्धिक एवं चिन्ताग्रस्त जीवन की ओर संकेत करते हुये मानव समाज में फैली हुई कुरीतियों पर घोर प्रहार किया है। यदि कहा जाये कि मण्टू समाज के वर्जित पात्रों का चरित्रचित्रण करने में उत्कृष्ट व्याख्याता है तो कोई अत्युक्ति न होगी। इस बात को नकारा नहीं जा सकता है कि मण्टू के विषयवस्तु संक्षिप्त थे। इस बात को भी स्वीकार करना होगा कि इन संक्षिप्त विषय-वस्तुओं को जिस कलात्मक प्रतिभा के साथ उन्होंने प्रस्तुत किया है वह अद्वितीय है। मण्टू की कला संप्रचार के निमित्त नहीं है। यह बात इससे भी स्पष्ट है जिस समय मण्टू का जन्म हुआ, वह प्रगतिवादिता का युग था और इस युग में किसान, असमता, आदि विषयों को ही कहानियों का आधार स्रोत बनाया जाता था। मण्टू ने इस पद्धति से हट कर एक भिन्न पद्धति को अपना कर इसी का निर्वाह करते रहे। मण्टू की वर्णन शैली भी अन्यों से भिन्न है। वे अत्योक्ति में विश्वास नहीं करते अपितु नपे-तुले शब्दों के माध्यम से बड़ी ही प्रबुद्धत्ता के साथ अपने विचारों एवं भावों की अभिव्यक्ति करते हैं। वस्तुतः इनकी काव्य-कला अतिसुकुमार है। ये अपनी रचनाओं में उपमाओं तथा रूपकों की बौछार भी नहीं करते अपितु विषय की दृष्टि से ऐसी शब्दावली प्रयोग करते हैं जो पाठकों को प्रभावित करने में सक्षम हो।

मण्टू उत्कृष्ट साहित्य पर विश्वास नहीं करते हैं। वे अपने पात्रों को प्रस्तुत करते हुये पारम्परिक पद्धति के अधीन भी नहीं हैं जिसके परिणामस्वरूप ही वे पारम्परिक प्रभाव से बचे रहे। मण्टू मूलतः एक कहानीकार हैं। यद्यपि इन्होंने काव्य की दूसरी विधाओं पर भी अपनी लेखनी चलाई किन्तु जिस सर्जनात्मक शक्ति ने इनकी दक्षता को महत्त्व एवं प्रतिष्ठा प्रदान की, वह इनकी कहानियों में एवं इस विधा में इनकी सम-कालीनता की डींग बहुत कम लोगों को है। इनके विषय वस्तु इनके पथ प्रदर्शकों एवं समकालीनों से भिन्न हैं। इनकी भावाभिव्यक्ति का माध्यम भी भिन्न है। इस प्रकार मण्टू की काव्यकला अपना पृथक् महत्त्व रखती है। इनके यहां कोई पारम्परिक बन्धन भी दृष्टिगोचर नहीं होते जबकि प्रारम्भ में इन्होंने भी पूर्वनिर्धारित नियमों के अनुसार अपनी कहानियां लिखनी प्रारम्भ कीं।

इस बात का वर्णन किया जा चुका है कि विषय वस्तु की दृष्टि से भी मण्टू की कहानियां अद्वितीय हैं। वे ऐसे निरीक्षित अनुभवों एवं भावनाओं को भी सृजनात्मक कार्यान्विति रूपी सांचे में इस प्रकार ढाल देते हैं कि कहीं पर भी विरोध की आशंका नहीं रहती है। इनकी वर्णन शैली में प्राचीनता के प्रति पक्षपात कहने मात्र के लिये भी दृष्टिगोचर नहीं होता है। इनकी कला की विशेषता यह है कि ये मानव व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिक एवं अशिष्ट अनुभवों से अस्वाभाविक आवरण सरकाते हुये इन अनुभवों तथा अभ्युक्तियों को बड़ी ही स्पष्टता के साथ प्रस्तुत करते हैं जिनका सम्बन्ध मानव के यथार्थ रूप से है। इनकी विषय वस्तु का आधार वेश्यायें एवं यौन-सम्बन्धों से पीड़ित (नपुंसक) पुरुष एवं स्त्रियां हैं। निश्छलता एवं यौन-सम्बन्धों (लिंगता) से पीड़ित ये दुश्चरित्र स्त्रियां जब मण्टू की कहानियों में स्थान पाती हैं तो मानव जीवन का यथार्थ रूप अपनी श्रेष्ठता एवं अश्रेष्ठता के साथ पूर्णरूपेण नग्न रूप में उभर आता है तथा मानव के नैसर्गिक अस्तित्व पर संलग्न प्राचीनता का चूर्ण पड़ जाता है। इस कार्यान्विति में मण्टू का गूढ़ निरीक्षण बहुत ही महत्त्वपूर्ण सिद्ध होता है। कृष्णचन्द्र ने मण्टू की इस विशेषता की ओर संकेत करते हुए लिखा है :—

"मण्टू ने ज़िन्दगी के मुशाहिदे में अपने आप को एक मोमी शमः की तरह

पिघलाया है। वह उर्दू अदब का वाहिद शंकर हैं जिसने ज़िन्दगी के ज़हर को घोल कर पिया है और फिर इस ज़ायके को, इस के रंग को खोल-खोल कर बयान किया है।"

मण्टू उर्दू साहित्य के पहले कहानीकार हैं जिन्होंने वेश्याओं, अपनी आन को बेचने वाली स्त्रियों, दलालों तथा इस सम्प्रदाय के अन्य लोगों को पहली बार मानवीय सहानुभूति के साथ देखा तथा अपनी कला में उभारा। इन्होंने अपने विचारों को भी एकाएक दृष्टि विगत नहीं किया अपितु स्वच्छन्द विचारों से किसी राजनीतिक सम्प्रदाय के अधीन न रह कर अपने मन: स्थित विचारों की अभिव्यक्ति की, जिनका इन्हें किसी न किसी रूप से मूल्य भी चुकाना पड़ा।

विषयों की दृष्टि से मण्टू की एक विशेषता यह है कि इन की कहानियों को पढ़ कर एक (अद्वैत) भाव की आकृति स्फुट रूप में उभर कर आती है। ये अपने भावों को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत करते हैं एवं अपने पात्रों के चरित्र को उनकी पूर्ण प्रतिष्ठा के साथ अपनी भावाभिव्यक्ति में उभारते हैं। निदर्शनार्थ "नया कानून" का "मंगू", "हतक" की "सौगन्धी", "ठण्डा गोश्त" का "ईशर सिंह", "खोशया का दलाल", "खोल दो कि सकीना", "टोबाटेक" का "बिशन सिंह", या मोज़ील की आबादः यहूदन,"— किसी भी पात्र को लीजिये अपना गूढ़ व्यक्तित्व लेकर उपस्थित होता है। लेकिन जो बात सहृदय पाठक के मन को प्रभावित करती है वह है भावों की प्रवाहपूर्ण अभिव्यक्ति जो पूरी कहानी का अध्ययन करने के उपरान्त ही सामने आती है। इस प्रभाव को स्थिर रखने के लिए मण्टू न केवल उपयुक्त रूपरेखा का निर्माण करते हैं अपितु इसके प्रभावपूर्ण आरम्भ एवं अन्त के लिये भी कड़ा परिश्रम करते हैं जिसे पढ़कर पाठक एकाएक प्रभावित हो जाता है। मण्टू को शब्दार्थ के सम्बन्ध का भी पूर्ण ज्ञान है। वे अपनी वर्णन शैली से अपनी कहानियों में नई जान डाल देते हैं। प्रत्येक शब्द अपने स्थान पर उपयुक्त एवं सार्थक है। कहानी से किसी भी परिच्छेद को हटाने का प्रयत्न करने पर कहानी में रंसभंग हो जाता है। आरम्भ तथा अन्त को मिलाने वाली मध्य कड़ियां भी इस अवस्था में दृष्टिगत होती हैं। विषय वस्तु की दृष्टि से कोई कहानी महत्वपूर्ण हो या न हो, प्रारम्भिक श्रृंगार-परक एवं मनोहर कहानियों से लेकर वेश्याओं तथा लिंग अथवा यौन सम्बन्धी कहानियों तक राजनैतिक, सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कहानियों में मण्टू की शैली उत्कृष्ट एवं सम्पूर्ण है।

मण्टू ने अपनी कहानियों में जिस भाषा का प्रयोग किया है वह मानव जीवन के साथ इस प्रकार जुड़ी है जिससे पाठक इन की रचना को पढ़कर झूमता नहीं अपितु अपने भीतर एक अजीब सी उष्णता का अनुभव करता है। साधारण सी बात को भी प्रभावोत्पादक शब्दों में वर्णन करने की शक्ति, युक्तियों का इस प्रकार प्रयोग करने की प्रतिभा कि इनका विषय एवं भाव स्पष्ट हो जाये। यह शैली (प्रतिभा) मण्टू की प्रारम्भिक कहानियों से लेकर इनकी अन्तिम कहानियों तक यथावत् उपलब्ध होती है। इनकी उपमायें इस वातावरण का एक अंग प्रतीत होती है जिस को वे बुन रहे हैं। इन में जो अकृत्रिमता एवं प्रगलभता दृष्टिगोचर होती है उससे प्रतीत होता है कि यही भावना स्वयं इस वातावरण का सृजन कर रही है। पुष्टि हेतु कुछ उदाहरण इस प्रकार दिये जा रहे हैं :—

१. गाली ठीक इस तरह उलझ कर रह गई थी जैसे बेरी के कांटों में कोई कपड़ा......नारह।

२. इस के तंग माथे पर पसीने की नन्हीं-नन्हीं बून्दें नमूदार हो गई जैसे मलमल में पनीर को आहिस्ता से दबा दिया गया हो..... खुशिया।

३. इसकी उम्र बमशकल चौदह बरस की होगी मगर इसके चेहरे से मालूम होता था कि वह अपने जिस्म को पीछे छोड़ कर आगे निकल गई है——पहचान।

४. वह कुछ इस तरह सिमटी जैसी किसी ने बुलन्दी से रेशमी थान फैंक दिया हो······मिस्री की डली ।

५. यह अशोक कुमार भी अजीब चीज़ है, पर्दे पर अश्क करता है तो ऐसा मालूम होता है जैसे कास्टरॉयल पी रहा हो······सजदा ।

मण्टू की वर्णन शैली काव्यात्मक होते हुए भी अपने भीतर एक विशेष प्रकार की सामग्री समेटे हुए है। ऐसी गद्य रचना आलोचना की सृजक सिद्ध हो सकती है । कहीं-कहीं पर धारदार खड़ग के समान तीक्ष्ण प्रहार हैं तो कहीं पर ऐसे आह्लादकारक चित्रण हैं जो सहृदय पाठक के मन को प्रभावित कर देते हैं और कहीं पर सरल साधारण भावाभिव्यक्ति जो लेखक के अल्हड़पन को दर्शाते हैं।

मण्टू का चरित्रचित्रण अत्यधिक उत्तेजक है। वे इस प्रकार घटनाओं की अभिव्यक्ति करते हैं कि इनका पात्र अपने व्यक्तित्व के यथार्थ रूप को लेकर उपस्थित होता है। मण्टू की कला की प्रतिष्ठा यदि एक ओर इनकी कहानी-रचना की तकनीक पर आधारित है तो दूसरी ओर पात्रों के चरित्र चित्रण पर। प्रेमचन्द के उपरांत यदि किसी कलाकार ने पात्रों की चरित्रचित्रण के महत्व को स्वीकार करते हुए उर्दू साहित्य को सजीव पात्र दिये तो वह सादत हसन मण्टू है। वस्तुतः इन्होंने उर्दू कहानी में पात्रों के महत्व को स्वीकार करवाया। मण्टू के पात्र इसी समाज में रहने वाले हैं। वे दैनिक जीवन से इनका निर्वाचन करते हैं। अपने अकेलेपन को दर्शाने के लिये वे इन पात्रों को एक विशेष वातावरण में डाल कर मानवीय अनुभवों से समृद्ध कर देते हैं। यही इन की कला की प्रतिष्ठा है। मण्टू के पात्र समुदाय में वेश्यायें, दलाल, नपुंसक, यौन सम्बन्धों से पीड़ित पुरुष एवं स्त्रियाँ, बच्चे और युवक, दुष्ट जनता, पाखण्डी, विरक्त स्त्रियां, धनाढ्य जन, दादागीरी करने वाले व्यक्ति, हिंसक पुरुष, उन्मत्त, अधार्मिक एवं स्वतन्त्र विचार रखने वाले व्यक्ति, हिन्दू, मुसलमान, तथा सिक्ख एवं यहूदी दृष्टिगत होते हैं। ये सभी पात्र अपने स्वाभाविक एवं यथार्थ रूप को लेकर उपस्थित होते हैं। मण्टू अपने व्यक्तित्व को इन पात्रों पर थोपते नहीं अपितु इन्हें अपने प्राकृतिक जीवन की अच्छाइयों एवं बुराइयों के साथ उभारते हैं। यही विशेषता मण्टू की कथात्मकता में है जिस के परिणामस्वरूप वे अन्य कलाकारों से आगे निकल जाते हैं। □

जुलूस

□ रतनलाल शांत

मां धूल सने पैर गीले कपड़े से पोंछ रही थी पर उसकी नज़रें मुझ पर गड़ी रहीं। ज़ाहिर था कि जुलूस में किये हुए वायदे के अनुसार अब मुझे आड़े हाथों लेने की तैयारी कर रही थीं, क्योंकि मैं जलूस में शामिल नहीं हुआ।

मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि वह भी आज आवेग में आकर घर से निकल पड़ेगी, यद्यपि मुहल्ले की सब बड़ी-बूढ़ियों को भी शामिल होते देख कर उसका आज का यह व्यवहार आशा के विपरीत नहीं था।

"क्यों रे ? चोरों की तरह गली में घुसकर भाग क्यों गए ?"

मैं हैरान था कि वह औरतों की भीड़ में कैसे मेरी हरकतें देखती रही थी। शायद वह मेरा ध्यान अपनी ओर खींचने को उत्सुक थी कि मैं उसकी जुर्रत देखूं, उसके साहस की दाद दूं।

"अब मुहल्ले में किसी को मुंह दिखा सकोगे ? भद्द कर दी मेरी, पड़ोसिनों के बीच......"

तीन दिनों से जुलूस निकल रहे थे। यह इस मुहल्ले के लिए नया अनुभव था। आम तौर पर शहर के जुलूस इस मुहल्ले को उपेक्षित करके दूसरी ओर से निकल कर बड़े चौक तक जाते या फिर अपनी कुण्ठा का बदला चौक से भाग आते हुए, यहां के मकानों पर पथराव करके लेते। अब की यहां के लोगों का स्वाभिमान आहत था, इसलिए इस जुलूस ने अभियान-का-सा रूप लिया था, जिसमें शामिल होना अनिवार्य कर दिया गया था। ऐसे में पुकारते गुहारते पड़ोसियों और दुहाइयां देती पड़ोसिनों की नज़रें बचा कर घर में छिपे रहना मुश्किल था। बच्चे भेदिया का काम करते। उनसे बचने का एक ही रास्ता था कि जुलूस में तब शामिल हुआ जाये जब वह घर के सामने से निकले फिर मौका पाकर किसी गली में खिसका जाये। थोड़ी दूर जाकर किसी बाजार में भटका जाये और लौटते लोगों के साथ ही घर आया जाये।

"कुछ कल परसों की भी सोचो। हमारे दुख-सुख में शामिल होने कौन आएगा, रे ?"

कल और परसों के लिए मेरे मन में योजनाएं बनी थीं, पर माता जी इस अभियान को जो——हमारे भविष्य से जोड़ रही थीं, मैं इतनी दूर के परिणामों पर सोचने के मूड़ में नहीं था ।

यह सच था कि सारा मुहल्ला, बच्चे बूढ़े जवान, जैसे किसी ने गहरी नींद से जगा दिये थे । जिन गली आंगनों में झांकना अशोभन और असभ्य माना जाता था, वे बातचीत, हंसी ठठोल तथा वाद-विवाद के लिए खुले छोड़ दिये गये थे। पूरा वातावरण जैसे किसी मधानी से मथ दिया गया हो। मेरे लिए भी इसमें शामिल होना आकर्षक अनुभव था । शरीर में झुरझुरी दौड़ जाती जब मैं खुद को ऐसी एक बहती भीड़ में पाता जो अधिकतर मेरे लिए सिर्फ आतंक और रोब का अर्थ रखती थी; जब मैं किनारे पर खड़ा शिष्टाचार की मूर्ति बना मुस्कराने की संयत अभिव्यक्ति करता। दो दिन ऐसी भीड़ में रोमांचित अनुभव किया—जाने क्या-क्या चिल्लाया, हाथ हवा में लहराये, आंखें निडर होकर, जिधर चाहीं मटका लीं। खुली सड़कों पर जो 'मूर्ख समूह' के सामने मेरी 'शर्मोहया' की साक्षी थीं। पर रोज़ के, तथा अनजाने उद्देश्य के इस जलसे जुलूस में बहुत देर बाँधे रखने की क्षमता न थी। मन ऊब गया और मैंने बगल की गली में शरण ली।

मां के लिए जुलूस ने ठाकुर जी की पूजा और मंदिर की सामूहिक प्रार्थना का समय और स्थान लिया था। हाथ मेरी पीठ पर फेरते हुए कहा—

"अब पछताने से क्या ?"

फिर खुद ही विषय बदल कर पूछा—"वह कौन सी सड़क है रे जो बड़े चौक के बगल से निकलती है ?"

मैंने देखा कि बगल की गली में जाकर मुझे जितनी शर्म उठानी पड़ रही है, मां बगल की किसी सड़क पर जुलूस के निकल चलने का वर्णन करती हुई गर्व का अनुभव कर रही है। आज भी जुलूस ने रास्ता बदला होगा इसलिए मां की जिज्ञासा का सही उत्तर दे पाना मुश्किल था। अधिकारी एक-एक करके सड़कों पर धारा १४४ लगाते जा रहे थे और इस तरह इस सामूहिक प्रदर्शन की सम्भावनाओं को कसते जा रहे थे। पर जुलूस के संयोजक चोरी छिपौव्वल का खेल खेलते और यों अपनी चतुरता से लोगों को जोखिम लेते रहने को प्रोत्साहित करते थे।

मुझे चुप देखकर मां ने शायद मेरी मुश्किल आसान करना चाही—

"अरे वही सड़क तो कह रही हूं जहां हर मकान के सामने बाग है और लोहे के बड़े-बड़े गेट हैं। बड़े गेट के अन्दर छोटे-छोटे किवाड़ है। अन्दर जाने के लिए वड़ा गेट खोलने की ज़रूरत नहीं पड़ती।······मैंने झांक कर देखा गेट से मकान तक पक्के सीमेंट के या पत्थर ईंट के रास्ते बने हैं, दोनों तरफ फूलों की क्यारियां और पेड़ हैं। सुन्दर झबरे कुत्ते घूमते फिरते हैं······" बड़ी तन्मयता से मां बता रही थीं। फिर मुस्करा कर कहने लगीं—

"हमारी तरह नहीं कि सड़क ही आंगन और सड़क ही बाग भी।······मैंने तो ऐसा सोचा भी न था। मन कितना खुश हो गया, प्रभु !"

वह पूछ रही थी पर सवाल उसके मन में इतना गहरा था कि मैं जवाब जुटा भी

लेता, वहां पहुंचना मुश्किल था। जवाब के लिये वह अधिक ठोस अता पता बता नहीं सकी और मैं बूझ नहीं पाया। क्या जानता था कि भाग आने की जवाबदेही यों देनी होगी, नहीं तो कम से कम आज अन्त तक उसके साथ हो लेता।

वह पैरों की धूल पोंछ चुकी थी। अब उसने एक कम्बल अपने घुटनों पर लिया और आंख मूंद कर सुस्ताने लगी फिर अचानक तमक कर बोली—

"पर क्या मज़ाल कि कोई मां का लाल तमाशा देखने ही सही, बाहर आ जाता। हमारे नारों से उनके मकान हिल गए होंगे।" ज़ाहिर था कि मां तुलना करके अब फैसला दे रही थी या किसी ज़ोरदार फैसले की कल्पना कर रही थी।

"फिर हम कहां पहुंच गये होंगे, रे? मेरे बग़ल में चल रही एक स्त्री ने कहा कि उधर से सनीमा का रास्ता जाता है। दूसरी तरफ कोई पुल पड़ता है। बीच में पुलिस वाला खड़ा रहता है।"

इस प्रश्न में कई इशारे थे, पर मेरी अनुमान बुद्धि अभी चकरा रही थी। मैं जुलूस वालों पर खीजने लगा। मां के मुख पर तेज़ था और आंखों में संतोष की दीप्ति। पिछले दिनों ऐसा नहीं था। वह आकर निढाल पड़ जाती। उसकी बहुएं खुद भी थकी होतीं इसलिये उनकी ज़रा सी तथा अपेक्षाकृत कम श्रद्धा सेवा भी चुपचाप स्वीकार की जाती। जुलूस की गर्मागर्मी से घर की सामान्य खामोशी पर भी असर पड़ता था। हंगामे का मज़ा उसकी चर्चा में होता है। और आज कुछ ऐसा ज़रूर हुआ होगा जहां मुझे मां ले जाना चाहती थी, इसलिए बड़ी कोमलता से प्याज़ के छिलकों की तरह परत-परत उठा रही थी।

"जहां पुलिस की छतरी है, वहाँ पहुंचे तो छोटे-छोटे बच्चों ने हमारे गिर्द घेरा डाल दिया। हम सड़क के बीचों बीच बैठ गयीं।"

और वह बच्चों की तरह हंसते-हंसते लोट पोट हो गईं। बहुएं भी आकर पास बैठीं और जिस अनुभव से खुद भी गुज़री थीं, उसका वर्णन सुन कर खुश होने लगीं।

"बीच सड़क में रे। दोनों तरफ गाड़ियों का आना जाना रुक गया। लोग बसों की छतों पर बैठ कर हमें देखने लगे। ऊंचे मकानों की खिड़कियों से भी लोग झांकने लगे। वह तो कश्मीरी नहीं लग रहे थे। पंजाबी होंगे। क्यों, वे बड़े मकान पंजाबियों के हैं?"

"वे होटल हैं अम्मां। विज़िटर रहते हैं उनमें।" एक बहू ने हंसते हुए कहा।

"उस बाजार को बड़े ध्यान से हमने देखा और तो देखने का मौका मिलता नहीं। बैठने से सुस्ता भी सकीं। हमने अपने जुलूस वालों की एक न मानी। बैठी ही रहीं।"

वह जैसे खुद से बोल रही थीं और मुस्करा रही थीं। फिर यकायक उसके लहजे में तबदीली आई—

"क्यों रे? तू तो बड़ा घूमता रहता है। इतनी जगहें मैंने बता दीं, तू एक भी पहचान न पाया।" सच है कि मुझ से अपने शहर के नक्शे का वह हिस्सा पहचाना नहीं जा रहा था और मां के चेहरे पर जो नक्शे उभर-डूब रहे थे, उनमें भटकता हुआ खुद को दोषी अनुभव कर रहा था। मां घर में बैठी रही हैं कि मैं घूमता रह सकूं।

"हम कितना चल आए होंगे, रे? पैर दर्द कर रहे हैं।"

जवाब उन्हें न चाहिए था न मैं दे ही सकता था इतना निश्चित था कि उन को यह दर्द बगलें झांकते बेटे के सामने मीठा लग रहा होगा। □



द्विमासिक **शीराज़ा** हिन्दी

मूल्य : एक प्रति दो रुपये (पूर्णांक—८५) वार्षिक शुल्क : दस रुपये

वर्ष २३/ अंक १ (एप्रिल-मई १९८७) नवम्बर १९८७ में प्रकाशित

'SHEERAZA HINDI'

Published by the Secretary on behalf of J & K Academy of Art, Culture & Languages, JAMMU & Printed at Rohini Printers, JALANDHAR (Pb.)